"समग्र शिक्षा के तहत निःशुल्क वितरित"

सामाजिक विज्ञान

इतिहास (हमारा भारत–III)

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

कक्षा आठवीं के लिए पाठ्य पुस्तक

2022

मौलिक शिक्षा विभाग, हरियाणा

ई-पाठशाला

क्यूआर (QR) कोड से संबद्ध ई-सामग्री प्राप्त करने के लिए उपयोगकर्ताओं के लिए चरणबद्ध मार्गदर्शिका

प्रत्येक अध्याय के पहले पृष्ठ पर स्थित कोड बॉक्स को क्विक रिस्पांस कोड – क्यूआर (QR) कोड कहते हैं। यह आपको अध्याय में दिए गए विषयों से संबंधित ई-सामग्री, जैसे ऑडियो, वीडियो, मल्टीमीडिया, पाठ्य-सामग्री आदि को प्राप्त करने में सहायता करेगा। पहला क्यूआर कोड संपूर्ण ई-पाठ्यपुस्तक प्राप्त करने के लिए है और प्रत्येक अध्याय में दिए गए क्यूआर कोड उस अध्याय से संबंधित ई-सामग्री प्राप्त करने में मदद करेंगे। यह प्रक्रिया आपको आनंदपूर्ण तरीके से सीखने में मदद करेगी।

अपने मोबाइल फ़ोन या टेबलेट द्वारा निम्नवत् चरणों का पालन कर और ई-पाठशाला के माध्यम से ई-सामग्री प्राप्त करें।

1. प्ले स्टोर से ई-पाठशाला स्कैनर एप इंस्टॉल करें और इसे खोलें
2. क्यूआर कोड स्कैनिंग विंडो को तैयार रखें
3. स्कैनर से क्यूआर कोड को स्कैन करें
4. लिंक को सिलेक्ट एवं क्लिक करें
5. उपलब्ध ई-सामग्री का प्रयोग करें

डेस्कटॉप या लैपटॉप पर ई-पाठशाला द्वारा ई-सामग्री प्राप्त करने के लिए नीचे दिए गए चरणों का पालन करें– https://epathshala.nic.in/topics.php पर जाएँ और क्यूआर कोड के नीचे दिए गए एल्फान्यूमेरिक कोड को दर्ज करें।

दीक्षा

दीक्षा एप को गुगल प्लेस्टोर से डाउनलोड करें फिर नीचे दिए गए चरणों का पालन करें। **दीक्षा** का उपयोग करते हुए आप अपने स्मार्टफोन या टेबलेट से ई-सामग्री प्राप्त करें।

1. अपनी पसंदीदा भाषा का चयन करें
2. अपनी भूमिका चुनें–शिक्षक या विद्यार्थी
3. पहुँच प्रदान करें और एप को अनुमति दें
4. क्यूआर कोड को स्कैन करने के लिए टैप करें
5. कैमरा पाठ्यपुस्तक के क्यूआर कोड पर फोकस करें
6. क्लिक करके क्यूआर कोड से संबद्ध ई-सामग्री प्ले करें

डेस्कटॉप या लेपटॉप पर दीक्षा का उपयोग करते हुए ई-सामग्री प्राप्त करने के लिए नीचे बताए गए चरणों का पालन करें– https://diksha.gov.in/resources पर जाएँ और क्यूआर कोड के नीचे दिए गए एल्फान्यूमेरिक कोड को दर्ज करें।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

जन-गण-मन

जन-गण-मन अधिनायक जय हे
भारत-भाग्य-विधाता।
पंजाब सिंध गुजरात मराठा
द्राविड़ उत्कल बंग।
विंध्य हिमाचल यमुना गंगा,
उच्छल जलधि तरंग।
तव शुभ नामे जागे,
तव शुभ आशिष माँगे;
गाहे तव जय गाथा।
जन-गण मंगलदायक जय हे,
भारत-भाग्य-विधाता।
जय हे, जय हे, जय हे,
जय जय जय जय हे।।

भारत माता की जय।

सामाजिक विज्ञान

इतिहास

हमारा भारत III

कक्षा आठवीं के लिए पाठ्यपुस्तक

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

हरियाणा विद्यालय शिक्षा बोर्ड
Board of School Education Haryana

मूल संस्करण :

© हरियाणा विद्यालय शिक्षा बोर्ड, भिवानी

संस्करण : **प्रथम - 2022**

संख्या : 1,50,000

मूल्य :

सर्वाधिकार सुरक्षित

- प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना, इस प्रकाशन के किसी भी भाग को छापना तथा इलैक्ट्रॉनिकी, मशीनी, फोटो प्रतिलिपि, रिकार्डिंग अथवा किसी विधि से पुनः प्रयोग पद्धति द्वारा इसका संग्रहण और प्रसारण वर्जित है।

- इस पुस्तक की बिक्री इस शर्त के साथ की गई है कि प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना, यह पुस्तक अपने मूल आवरण अथवा जिल्द के अलावा किसी अन्य प्रकार से व्यापार द्वारा उधारी पर पुनःविक्रय या किराये पर न दी जायेगी और न ही बेची जायेगी।

- सभी मानचित्र ArcGIS सॉफ्टवेयर के माध्यम से तैयार किए गए हैं। इस प्रक्रिया में कई मुक्त स्रोतों से जुटाए गए भू-आकृतिक आंकड़ों का प्रयोग किया गया है। सभी मानचित्रों का प्रति सत्यापन कर लिया गया है एवं अशुद्धियों को न्यूनीकृत करने का यथासम्भव प्रयत्न किया गया है, यद्यपि आधार मानचित्र की शुद्धता के आधार पर सीमांकन में बहिर्वेशन अथवा अंतर्वेशन की संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता। यद्यपि आधिकारिक और स्थापित मानचित्रों को ही आधार मानचित्रों के रूप में प्रयुक्त किया गया है तथापि मानचित्रों में कोई असंगतता सुधी पाठकों के ध्यान में आती है, तो वे यथोचित प्रमाणों के साथ उसे शुद्धिकरण हेतु प्रस्तुत करने की कृपा करें।

- पाठ्यपुस्तक में प्रयुक्त चित्रों को विभिन्न पुस्तकों, संग्रहालयों और इंटरनेट पर उपलब्ध मुक्त स्रोतों से संग्रहीत किया गया है। चित्रों के प्रयोग का उद्देश्य विषयवस्तु का स्पष्टीकरण तथा छात्रों का घटनाओं, पात्रों और स्थानों से जुड़ाव करवाने का है। इन चित्रों को मात्र सामान्य सूचना एवं शैक्षिक उद्देश्यों के लिए ही प्रयोग किया गया है।

- इस प्रकाशन का सही मूल्य इस पृष्ठ पर मुद्रित है। रबड़ की मुहर अथवा चिपकाई गई पर्ची (स्टीकर) या किसी अन्य विधि द्वारा अंकित कोई भी संशोधित मूल्य मान्य नहीं होगा।

सचिव

मुद्रक : **सुप्रीम ऑफसेट प्रेस**, 133, उद्योग केंद्र एक्स.–1, ग्रेटर नोएडा, उ.प्र.

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

प्राक्कथन

समय परिवर्तन के साथ–साथ राष्ट्रीय उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए शिक्षा में परिवर्तन अति आवश्यक है ताकि विकास तीव्रतम गति से हो। विद्यालयी शिक्षा को प्रभावशाली, सकारात्मक व सुरुचिपूर्ण बनाने हेतु पाठ्यचर्या में समय–समय पर सकारात्मक बदलाव करना एक आवश्यक कदम है। वर्तमान में निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा के अंतर्गत समस्त शिक्षण अथवा शैक्षणिक क्रियाओं के केन्द्र में छात्र हैं। इसलिए छात्रों की सीखने के प्रति रुचि बढ़ाने, उनका स्थानीय, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय विषयों पर स्वतन्त्र चिंतन विकसित करने के उद्देश्य से भी पाठ्यचर्या में परिवर्तन आवश्यक है। इस कार्य में शिक्षक की सहयोगी एवं मार्गदर्शक की भूमिका अपेक्षित रहती है।

इस प्रकार पाठ्यचर्या में बदलाव की आवश्यकता को देखते हुए, हरियाणा विद्यालय शिक्षा बोर्ड ने इतिहास विषय के विशेषज्ञों (जिनमें विद्यालय से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक के शिक्षक शामिल थे) से विचार–विमर्श करके कक्षा छठी से दसवीं तक के इतिहास विषय के पाठ्यक्रम का विश्लेषण करते हुए नया पाठ्यक्रम तैयार किया है। इस पाठ्यक्रम को तैयार करते समय राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 की उस भावना को ध्यान में रखा गया है जिसके अन्तर्गत विभिन्न विद्यालयी विषयों के माध्यम से छात्रों को भारत का उपयुक्त ज्ञान कराने की अनुशंसा की गई है। इस परिधि में भारतवासियों की सफलता की गाथाएँ तथा भविष्य की चुनौतियों का उल्लेख व भारत के सुदूर क्षेत्रों में बसने वाले समाज की ज्ञान परम्पराओं का विशेष समावेश करने की बात कही गई है। शिक्षा नीति–2020 के निर्देशों की अनुपालना इतिहास की इन पुस्तकों के माध्यम से करने का सार्थक प्रयत्न किया गया है।

परिवर्तित पाठ्यक्रम के अनुसार छठी कक्षा से लेकर दसवीं कक्षा तक क्रमशः हमारा भारत–I (कक्षा–6), हमारा भारत–II (कक्षा–7), हमारा भारत–III (कक्षा–8), हमारा भारत–IV (कक्षा–9) और भारत एवं विश्व (कक्षा–10) नाम से नई पाठ्यपुस्तकों को तैयार करवाते समय यह भी ध्यान रखा गया कि ये सरल, सुरुचिपूर्ण, सुग्राह्य व आकर्षक हों, ताकि छात्र आसानी से इनमें उपलब्ध ज्ञान को आत्मसात् कर स्थानीय एवं राष्ट्रीय तथा सामाजिक व सांस्कृतिक परिवेश से जुड़ें। छात्र ऐतिहासिक व सांस्कृतिक गौरव, राष्ट्र और संविधान के प्रति निष्ठा, आत्मसम्मान व स्वाभिमान से ओत–प्रोत होकर स्वयं को एक सुसभ्य, सुसंस्कृत तथा सकारात्मक नागरिक के रूप में स्थापित कर सकें।

बोर्ड को इन पुस्तकों को प्रस्तुत करते हुए अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है, साथ ही यह विश्वास भी है कि ये पाठ्यपुस्तकें छात्रों व शिक्षकों के लिए उपयोगी सिद्ध होंगी। ये पाठ्यपुस्तकें अध्ययन–अध्यापन के साथ–साथ छात्रों के व्यक्तित्व के चहुंमुखी विकास में प्रभावी मार्गदर्शन करेंगी। पुस्तकों को भविष्य में श्रेष्ठतर तथा गुणवत्तापूर्ण बनाने के लिए आपके बहुमूल्य सुझाव आमंत्रित हैं।

अध्यक्ष
हरियाणा विद्यालय शिक्षा बोर्ड
भिवानी

उपाध्यक्ष
हरियाणा विद्यालय शिक्षा बोर्ड
भिवानी

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

इतिहास बोध

सामाजिक विज्ञान के अंतर्गत आने वाले सभी विषय यथा इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र, नागरिक शास्त्र इत्यादि हमें दुनिया को समझने में मदद करते हैं। इस समझ के आधार पर हम अपने व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन को भविष्य में श्रेष्ठतर बनाने का सपना संजोते हैं और उसके लिए यथेष्ट उद्यम करते हैं। आज की दुनिया एकाएक निर्मित नहीं हुई, अपितु हजारों वर्षों से बहुत धीरे–धीरे समाज में घटने वाले परिवर्तनों का परिणाम है। इन परिवर्तनों की कहानी को उनके यथार्थ स्वरूप में समझना ही सम्यक् इतिहास बोध है।

प्राय: दो प्रकार के लोग हमारे ध्यान में आते हैं– एक वे लोग, जिन्होंने ऐसे सामाजिक परिवर्तनों को प्रारम्भ किया और उनका नेतृत्व किया तथा दूसरे वे जिनके जीवन इन परिवर्तनों से प्रभावित हुए। एक स्वाधीन और संप्रभु राष्ट्र के नागरिकों के लिए यह बहुत आवश्यक है कि वे अपनी विद्यालयी शिक्षा के दौरान ही इतिहास की घटनाओं और काल–क्रम के परिवर्तनों को वस्तुपरक ढंग से समझें और उसी समझ के आधार पर राष्ट्र के भविष्य का मार्ग प्रशस्त करने में अपना योगदान दें। किन्तु यह भी एक कटु सत्य है, कि दुनिया के अनेक देश लंबे समय तक औपनिवेशिक ताकतों की दासता के बंधक रहे हैं। इन ताकतों ने न केवल अपने अधीनस्थ राष्ट्रों के संसाधनों पर कब्जा करने के कुत्सित प्रयास किये, अपितु उन देशों के नागरिकों की इतिहास संबंधी समझ को भी नियंत्रित करने का प्रयत्न किया। इस नियंत्रण के लिए विद्यालयों में पढ़ाई जाने वाली इतिहास की विद्यालयी पाठ्यपुस्तकों को एक उपकरण के रूप में प्रयोग किया जाता रहा है। भारत भी लंबे समय तक औपनिवेशिक दासता से ग्रसित रहा। औपनिवेशिक शासकों ने भारतीय समाज को उसकी अस्मिता से विमुख करने के लिए हमारे नायकों, योद्धाओं, क्रांतिकारियों, संतों के योगदान को तोड़-मरोड़कर पाठ्यपुस्तकों में प्रस्तुत किया, वहीं दूसरी ओर विदेशी आक्रांताओं और विस्तारवादी शक्तियों के कृत्यों को उचित ठहराने तथा उनके भीषण प्रभावों को कम करके दिखाने की कोशिश भी इसी माध्यम से की गयी।

इस स्थिति के आलोक में यह आवश्यक हो जाता है कि स्वाधीन देश में इतिहास के प्रसंगों को वस्तुपरक ढंग से विद्यालयों में प्रारम्भ से ही छात्रों के सम्मुख प्रस्तुत किया जाये तथा उनके वर्तमान को समझने और भविष्य की कल्पना बुनने की क्षमता का निर्माण करना इतिहास की पाठ्यपुस्तकों का एक प्रमुख दायित्व है।

प्रस्तुत पाठ्यपुस्तकें इसी दिशा की ओर एक कदम हैं।

अध्यक्ष
हरियाणा विद्यालय शिक्षा बोर्ड
भिवानी

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति

कक्षा छठी से दसवीं

संरक्षक

प्रो. जगबीर सिंह, अध्यक्ष, हरियाणा विद्यालय शिक्षा बोर्ड, भिवानी

डॉ. ऋषि गोयल, निदेशक, राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद, हरियाणा, गुरुग्राम

मुख्य समन्वयक

डॉ. रमेश कुमार, एसोसिएट प्रोफेसर (इतिहास), राजकीय महाविद्यालय, अहड़वाला, बिलासपुर (यमुनानगर)

समन्वयक

डॉ. लक्ष्मी नारायण, प्राध्यापक (इतिहास), राजकीय मॉडल संस्कृति वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय, ततारपुर इस्तमुरार (रेवाड़ी)

लेखक मंडल

डॉ. रमेश कुमार, एसोसिएट प्रोफेसर (इतिहास), राजकीय महाविद्यालय, अहड़वाला, बिलासपुर (यमुनानगर)

डॉ. लक्ष्मी नारायण, प्राध्यापक (इतिहास), राजकीय मॉडल संस्कृति वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय, ततारपुर इस्तमुरार (रेवाड़ी)

डॉ. गुरमेज सिंह, असिस्टेंट प्रोफेसर (इतिहास), डी.ए.वी. महाविद्यालय, सढौरा (यमुनानगर)

डॉ. संजीव कुमार, एसोसिएट प्रोफेसर (इतिहास), राजकीय महाविद्यालय, छछरौली (यमुनानगर)

डॉ. मनमोहन शर्मा, पूर्व अध्यक्ष (इतिहास विभाग), बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर (रोहतक)

डॉ. सुरेन्द्र कुमार, असिस्टेंट प्रोफेसर (इतिहास), वैश्य महाविद्यालय, भिवानी

डॉ. यशवीर सिंह, प्राचार्य, जनता विद्या मंदिर गणपत राय रासीवासिया महाविद्यालय, चरखी दादरी

डॉ. नरेन्द्र परमार, असिस्टेंट प्रोफेसर (इतिहास), पुरातत्व एवं इतिहास विभाग, हरियाणा केन्द्रीय विश्वविद्यालय, महेन्द्रगढ़

डॉ. सुखवीर सिंह, एसोसिएट प्रोफेसर (इतिहास), बंसीलाल राजकीय महाविद्यालय, लोहारू (भिवानी)

डॉ. बी.बी. कौशिक (दिवंगत), सेवानिवृत्त एसोसिएट प्रोफेसर (इतिहास), पी.आई.जी. राजकीय महिला महाविद्यालय, जीन्द

श्री राम कुमार केसरिया, एक्सटैंशन लेक्चरर (इतिहास), राजकीय महाविद्यालय, जीन्द

डॉ. राकेश कुमार, असिस्टेंट प्रोफेसर (इतिहास), राजकीय महाविद्यालय, मातनहेल (झज्जर)

डॉ. अशोक कुमार, एसोसिएट प्रोफेसर (इतिहास), राजकीय महिला महाविद्यालय, गुरावड़ा (रेवाड़ी)

श्री विपिन शर्मा, पी.जी.टी. (इतिहास), महाराजा अग्रसैन कन्या वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय, सिरसा

श्री कुन्दन लाल कालड़ा, सेवानिवृत्त प्रधानाचार्य, राजकीय वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय, भटौली (यमुनानगर)

श्री सुरेश पाल, सेवानिवृत्त प्रधानाचार्य, राजकीय वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय, भंभौल (यमुनानगर)

डॉ. दिलबाग बिसला, असिस्टेंट प्रोफेसर (गेस्ट फैकल्टी), चौ. रणबीर सिंह विश्वविद्यालय, जीन्द

डॉ. दलजीत बिसला, पी.जी.टी. (इतिहास), राजकीय वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय, बराह कलां (जीन्द)

डॉ. धीरज कौशिक, असिस्टेंट प्रोफेसर (इतिहास) (अनुबंधित), दयाल सिंह कॉलेज, करनाल

डॉ. मनोज कुमार, पी.जी.टी. (इतिहास), राजकीय वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय, ग्योंग (कैथल)

डॉ. विनोद कुमार, असिस्टेंट प्रोफेसर (राजनीति शास्त्र), आर.के.एस.डी. कॉलेज, कैथल

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

श्री अजय सिंह, एक्सटेंशन लेक्चरर (इतिहास), राजकीय महाविद्यालय, बिरोहड़ (झज्जर)

श्रीमती पूजा छाबड़ा, पी.जी.टी. (इतिहास), गीता निकेतन आवासीय विद्यालय, कुरुक्षेत्र

डॉ. नीरज कांत, पी.जी.टी. (इतिहास), राजकीय मॉडल संस्कृति वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय, सांघी (रोहतक)

श्री पिरथी सैनी, प्रधानाचार्य, राजकीय कन्या वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय, जगाधरी (यमुनानगर)

डॉ. हरीश चन्द्र झंडई, सेवानिवृत्त एसोसिएट प्रोफेसर (इतिहास), एम.एल.एन. कॉलेज, यमुनानगर

सम्पादक मंडल

डॉ पवन कुमार, असिस्टेंट प्रोफेसर (भूगोल विभाग) चौ. बंसीलाल विश्वविद्यालय, भिवानी

श्रीमती सुरिन्द्र कौर सैनी, पी.जी.टी. (अर्थशास्त्र), गीता निकेतन आवासीय विद्यालय, कुरुक्षेत्र

श्री जोगिन्द्र सिंह, पी.जी.टी. (हिन्दी), राजकीय उच्च विद्यालय, सिधनवा, बहल (भिवानी)

श्रीमती मीना रानी, हिन्दी अधिकारी, गुरु जम्भेश्वर विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, हिसार

डॉ. मुदिता वर्मा, सेवानिवृत्त एसोसिएट प्रोफेसर, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हिसार

श्री अरविंद कुमार, पी.जी.टी. (अंग्रेजी), राजकीय उच्च विद्यालय, सांचला (फतेहाबाद)

श्रीमती सीमा गुप्ता, टी.जी.टी (सामाजिक अध्ययन), गीता निकेतन आवासीय विद्यालय, कुरुक्षेत्र

श्री नीरज अत्री, प्रेजीडेंट, नेशनल सेंटर फॉर हिस्टोरीकल एंड कम्पेरेटिव स्टडीज, पंचकूला

श्री अश्विनी शाडिल्य, पी.जी.टी. (हिन्दी), जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान, पंचकूला

श्री राजेश कुमार, डी.टी.पी. ऑपरेटर, चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

समन्वय सहायक

श्री चांद राम शर्मा, सहायक सचिव, हरियाणा विद्यालय शिक्षा बोर्ड, भिवानी

श्रीमती सन्तोष नरवाल, सहायक सचिव, हरियाणा विद्यालय शिक्षा बोर्ड, भिवानी

श्री नेपाल सिंह, अधीक्षक, हरियाणा विद्यालय शिक्षा बोर्ड, भिवानी

तकनीकी सहयोग, ग्राफिक्स एवं साज-सज्जा

श्री कुलदीप कुमार, ग्राफिक डिजाइनर (अनुबंधित), चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

श्री भारत सैनी, ग्राफिक डिजाइनर, कुरुक्षेत्र

पुनरीक्षण एवं अनुमोदन समिति

प्रो. के. रत्नम, सदस्य सचिव, भारतीय ऐतिहासिक अनुसंधान परिषद (आई.सी.एच.आर.), नई दिल्ली

प्रो. ज्ञानेश्वर खुराना, सेवानिवृत्त प्रोफेसर (मध्यकालीन इतिहास) व भूतपूर्व अध्यक्ष, इतिहास विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

प्रो. विघनेश कुमार त्यागी, प्रोफेसर, इतिहास विभाग, चौ. चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ (उत्तर प्रदेश)

डॉ. प्रियतोश शर्मा, अध्यक्ष, इतिहास विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़

प्रो. सुरजीत कौर जॉली, सेवानिवृत प्राचार्या, श्यामा प्रसाद मुखर्जी महाविद्यालय, नई दिल्ली

डॉ. प्रशान्त गौरव, एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, चण्डीगढ़

डॉ. अंजलि जैन, एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, इतिहास विभाग, वैश्य महिला महाविद्यालय, रोहतक

डॉ. पी. सी. चान्दावत, सेवानिवृत प्राचार्य, एन.डी.बी. राजकीय महाविद्यालय, नोहर, हनुमानगढ़ (राजस्थान)

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

आभार

ये पुस्तकें अनेक इतिहासकारों, शिक्षाविदों और शिक्षकों के सामूहिक प्रयत्नों का प्रतिफल है। इन पुस्तकों के लेखन और संशोधन में लम्बा समय लगा है। ये पुस्तकें विभिन्न कार्यशालाओं एवं बैठकों में हुई चर्चाओं और विचारों के आदान-प्रदान से उपजी हैं। इस प्रक्रिया में विभिन्न लोगों ने अपनी-अपनी क्षमता और योग्यता के अनुरूप पूर्ण सहयोग दिया है।

हरियाणा विद्यालय शिक्षा बोर्ड एवं राज्य शैक्षणिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् हरियाणा ने इन पुस्तकों के निर्माण की प्रेरणा पद्म भूषण श्री दर्शन लाल जैन (दिवंगत) एवं प्रख्यात इतिहासकार प्रोफेसर सतीश चंद्र मित्तल (दिवंगत) से ली। शिक्षा बोर्ड, प्रदेश के शिक्षा मंत्री श्री कंवर पाल तथा विद्यालयी शिक्षा के अतिरिक्त मुख्य सचिव डॉ. महावीर सिंह, भा.प्र.से. का आभार व्यक्त करता है, कि उन्होंने पुस्तकों को तैयार कराने का महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व हरियाणा विद्यालय शिक्षा बोर्ड को दिया। इन पुस्तकों को तैयार करने में अनेकों व्यक्तियों, संस्थाओं एवं संगठनों ने मदद की है। इस कार्य में दिए गए सहयोग के लिए हरियाणा विद्यालय शिक्षा बोर्ड एवं राज्य शैक्षणिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् (हरियाणा), दिल्ली, पंजाब, हरियाणा और राजस्थान में स्थित विभिन्न संग्रहालय एवं पुस्तकालय के संचालकों का आभार व्यक्त करता है। पुस्तकों में लिए गए व्यक्तियों, अभिलेखों, स्मारकों, मूर्तियों, खुदाई में मिले पुरातात्विक अवशेषों, मिट्टी के बर्तनों, उपकरणों के व अन्य चित्रों के लिए हरियाणा विद्यालय शिक्षा बोर्ड, राज्य शैक्षणिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्, हरियाणा पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग, लोकसभा गैलरी एवं विभिन्न इंटरनेट वेबसाइट्स का भी आभार व्यक्त करता है।

हमने पुस्तक में सहयोग के लिए सभी के आभार-ज्ञापन का प्रयास किया है लेकिन अगर किसी व्यक्ति या संस्था का नाम छूट गया है तो इस भूल के लिए हम क्षमाप्रार्थी हैं।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

निदेशक
राज्य शैक्षणिक अनुसंधान
एवं प्रशिक्षण परिषद हरियाणा
गुरुग्राम

[1][भाग 4क]

मूल कर्त्तव्य

51 क. मूल कर्त्तव्य–भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य होगा कि वह–

क) संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्र ध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे।

ख) स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्चव आदर्शों को हृदय में संजोए रखे और उनका पालन करे।

ग) भारत की प्रभुता, एकता और अखण्डता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण रखे।

घ) देश की रक्षा करे और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे।

ड) भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभाव से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो स्त्रियों के सम्मान के विरुद्ध है।

च) हमारी सामासिक संस्कृति की गौरवशाली परंपरा का महत्व समझे और उसका परिरक्षण करे।

छ) प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करे और उसका संवर्धन करे तथा प्राणि मात्र के प्रति दयाभाव रखे।

ज) वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे।

झ) सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे।

ञ) व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधायों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत प्रयास करे जिससे राष्ट्र निरन्तर बढ़तेर हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊंचाइयों को छू ले।

[2][ट) यदि माता-पिता या संरक्षक है, छह वर्ष से चौदह वर्ष तक की आयु वाले अपने, यथास्थिति, बालक या प्रतिपाल्य के लिए शिक्षा के अवसर प्रदान करे।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

---

1. संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 की धारा 11 द्वारा (3-1-1977 से) अंत:स्थापित।
2. संविधान (छियालीसवां संशोधन) अधिनियम, 2002 की धारा 4 द्वारा (1-4-2010 से) अंत:स्थापित।

विषय सूची

	अध्याय	पृष्ठ संख्या
1.	मुगल सम्राट एवं उनका प्रारम्भिक प्रतिरोध	1
2.	सिक्ख गुरु परम्परा	16
3.	राष्ट्रीय भक्ति आंदोलन	33
4.	छत्रपति शिवाजी एवं पेशवा	44
5.	सत्रहवीं शताब्दी में मुगलों का क्षेत्रीय प्रतिरोध	57
6.	अठारहवीं सदी का भारत	70
7.	यूरोपियन घुसपैठ तथा उनकी विस्तारवादी नीतियाँ	81
8.	कम्पनी की शोषणकारी नीतियां व उनका विरोध	92
9.	1857 ई. की महान क्रान्ति	106

©BSEH Bhiwani
Not to be republished

भारत का संविधान

भाग-3 (अनुच्छेद 12-35)

(अनिवार्य शर्तों, कुछ अपवादों और युक्तियुक्त निर्बंधान के अधीन)

द्वारा प्रदत्त

मूल अधिकार

समता का अधिकार

- विधि के समक्ष एवं विधियों के समान संरक्षण।
- धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्मस्थान के आधार पर।
- लोक नियोजन के विषय में।
- अस्पृश्यता और उपाधियों का अंत।

स्वातंत्र्य-अधिकार

- अभिव्यक्ति, सम्मेलन, संघ, संचरण, निवास और वृत्ति का स्वातंत्र्य।
- अपराधों के लिए दोष सिद्धि के संबंध में संरक्षण।
- प्राण और दैहिक स्वतंत्रता का संरक्षण।
- छः से चौदह वर्ष की आयु के बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा।
- कुछ दशाओं में गिरफ्तारी और निरोध से संरक्षण।

शोषण के विरुद्ध अधिकार

- मानव के दुर्व्यापार और बलात् श्रम का प्रतिषेध।
- परिसंकटमय कार्यों में बालकों के नियोजन का प्रतिषेध।

धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार

- अंत:करण की और धर्म के अबाध रूप से मानने, आचरण और प्रचार की स्वतंत्रता।
- धार्मिक कार्यों के प्रबंध की स्वतंत्रता।
- किसी विशिष्ट धर्म की अभिवृद्धि के लिए करों के संदाय के संबंध में स्वतंत्रता।
- राज्य निधि से पूर्णतः पोषित शिक्षा संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा या धार्मिक उपासना में उपस्थित होने के संबंध में स्वतंत्रता।

संस्कृति और शिक्षा संबंधी अधिकार

- अल्पसंख्यक-वर्गों को अपनी भाषा, लिपि या संस्कृति विषयक हितों का संरक्षण।
- अल्पसंख्यक-वर्गों द्वारा अपनी शिक्षा संस्थाओं का स्थापन और प्रशासन।

सांविधानिक उपचारों का अधिकार

- उच्चतम न्यायालय एवं उच्च न्यायालय के निर्देश या आदेश या रिट द्वारा प्रदत्त अधिकारों को प्रवर्तित कराने का उपचार।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

अध्याय

1 मुगल सम्राट एवं उनका प्रारम्भिक प्रतिरोध

बाबर ने 1526 ई. में मुगल राजवंश की नींव रखी। परन्तु मुगलों को प्रारम्भ से ही भारतीय स्थानीय शक्तियों के कड़े प्रतिरोधों का सामना करना पड़ा। 1527 ई. में खानवा के युद्ध में राणा संग्राम सिंह ने बाबर का प्रतिरोध किया। बाबर के उत्तराधिकारी हुमायूँ को तो शेरशाह सूरी ने हिन्दुस्तान से ही खदेड़ दिया। हेमचन्द्र विक्रमादित्य ने दिल्ली एवं आगरा से मुगलों को हराकर हिन्दू साम्राज्य को पुनः स्थापित करने का प्रयास किया। रानी दुर्गावती और महाराणा प्रताप ने मुगलों की अधीनता स्वीकार नहीं की। महाराणा प्रताप तो आजीवन अकबर के लिए प्रबल चुनौती बने रहे। प्रस्तुत अध्याय में हम मुगल सम्राटों एवं उनके विरुद्ध होने वाले प्रारंभिक प्रतिरोधों विशेषकर हेमचन्द्र विक्रमादित्य, रानी दुर्गावती एवं महाराणा प्रताप का विस्तृत अध्ययन करेंगे।

1526 ई. में भारत की राजनैतिक स्थिति अच्छी नहीं थी। भारत छोटे-छोटे राज्यों में बंटा हुआ था। इन राज्यों के शासक आपस में एक-दूसरे से ईर्ष्या रखते थे तथा लड़ते रहते थे जिसका लाभ तैमूर और चंगेज खां के वंशज ज़हीरुद्दीन मुहम्मद बाबर ने उठाया। बाबर ने पानीपत के पहले युद्ध (1526 ई.) में दिल्ली के अफगान सुल्तान इब्राहिम लोधी को हराकर भारत में मुगल वंश की नींव रखी। इस वंश के शासकों ने लंबे समय तक दिल्ली पर शासन किया।

मुगल शासक

1. बाबर (1526-1530 ई.)
2. हुमायूँ (1530-1540 व 1555-1556 ई.)
3. अकबर (1556-1605 ई.)
4. जहांगीर (1605-1627 ई.)
5. शाहजहाँ (1627-1658 ई.)
6. औरंगज़ेब (1658-1707 ई.)
7. उत्तरवर्ती ग्यारह मुगल शासक (1707-1857 ई.)

मुगल कौन थे?

मुगल मूल रूप से मध्य एशिया के थे। वे तुर्क व मंगोल जाति का मिश्रण माने जाते हैं। मुगल चगताई भाषा बोलते थे, जो तुर्की की ही एक बोली थी। उज़्बेगों से हारने के बाद बाबर ने भारत की ओर रुख किया।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

1. बाबर (1526-1530 ई.) : बाबर भारत में मुगल वंश का संस्थापक था। वह उज़्बेकिस्तान का निवासी था। बाबर ने 1519 ई. से 1526 ई. के बीच में भारत पर पांच आक्रमण किए। उसका पाँचवाँ आक्रमण दिल्ली पर हुआ। इस युद्ध में उसने इब्राहिम लोदी को हराकर मुगल वंश की नींव रखी। यह युद्ध पानीपत के मैदान में 1526 ई. में लड़ा गया। इस युद्ध में बाबर ने भारत में पहली बार तोपों तथा तुलुगमा युद्ध प्रणाली का प्रयोग किया। इस युद्ध के बाद बाबर को 1527 ई. में खानवाँ के युद्ध में राणा सांगा व हसन खाँ मेवाती से दो-दो हाथ करने पड़े तथा बाबर ने जेहाद का सहारा लेकर युद्ध को जीता। इसके बाद बाबर ने चंदेरी (1528 ई.) व घाघरा (1529 ई.) के युद्ध में विजय प्राप्त करके मुगल वंश की नींव को सुदृढ़ किया।

राणा संग्राम सिंह (राणा सांगा) : बाबर को भारत में जड़ें जमाता देखकर उस काल के सबसे शक्तिशाली हिन्दू शासक राणा सांगा (1482-1528 ई.) ने उसे युद्ध में ललकारा। राणा ने बहुत से भारतीय राजाओं को एक संघ का रूप दिया, जिसमें चँदेरी के मेदिनीराय, मेवात के हसन खाँ मेवाती और पानीपत में परास्त हुए अफगान भी शामिल थे। बाबर ने राणा सांगा का समर्थन करने वाले मुसलमानों को काफिर घोषित कर दिया। राजस्थान के भरतपुर जिले में, खानवा के पास 16 मार्च, 1527 को दोनों सेनाएं आमने-सामने आ डटीं। राणा सांगा ने मुगलों के पांव उखाड़ दिए। घाव लगने से मूर्छित होने के कारण राणा सांगा को युद्ध क्षेत्र से बाहर जाना पड़ा। राजपूतों के साहसपूर्ण प्रतिरोध को देखते हुए बाबर ने न तो उसका पीछा किया और न ही वह मेवाड़ प्रदेश पर आक्रमण करने का साहस जुटा पाया।

हरियाणा के वीर मोहन सिंह मंढार : मोहन सिंह मंढार का सम्बन्ध हरियाणा के कैथल जिले से था। उसका जीवन संघर्षों में व्यतीत हुआ। उसने अपने गाँव को घेरने वाले बाबर के भेजे हुए मुगलों को भारी क्षति पहुंचाई। बाबर ने अब बड़ी भारी सेना के साथ अपने सिपहसालार तरसम बहादुर और नौरंगबेग को भेजा जो पानीपत में लड़ चुके थे। मोहन सिंह की वीरता की कथाएँ सुन चुके मुगलों ने धोखा देने की योजना पहले से ही बना रखी थी। मुगलों ने सेना को तीन हिस्सों में बांटा। जब ग्रामीण युद्ध में व्यस्त थे, तभी पीछे से आकर बाबर के सैनिकों ने पूरे गाँव को जला डाला। मोहन सिंह गाँव को जलता देख गाँव की ओर वापस आए। अपने लोगों को बचाने के प्रयत्न में मोहन सिंह को कैद कर लिया गया। उस दिन हज़ारों नर-नारियों और बच्चों को शाही सेना ने कैद कर लिया और मोहन सिंह के साथ उन कैदियों को दिल्ली ले जाया गया। बाबर ने इन्हें सज़ा-ए-मौत का फरमान सुनाया पर साथ-साथ यह भी कहा कि यदि वे इस्लाम कबूल लेते हैं तो उनकी सज़ा माफ कर दी जायेगी। इस्लाम स्वीकार न करने पर मोहन सिंह को मौत के घाट उतार दिया गया।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

हसन खाँ मेवाती : पानीपत की विजय के बाद बाबर ने हसन खाँ मेवाती को अपने साथ मिलाने के लिये उन्हें इस्लाम का वास्ता दिया। लेकिन हसन खां की देश भक्ति के सामने मज़हब का वास्ता काम नहीं आया। 16 मार्च, 1527 ई. को हसन खां ने राणा सांगा के साथ मिलकर 'खानवा' के मैदान में बाबर से लोहा लिया। जब तीर से घायल राणा सांगा हाथी के हौदे में मूर्छित हो गए और राजपूत सेना के पैर उखड़ने लगे, तो सेनापति का झण्डा खुद हसन खाँ मेवाती ने ही सँभाला और बाबर को ललकारते हुए उस पर ज़ोरदार हमला बोल दिया। मगर इसी दौरान एक तोप का गोला हसन खाँ मेवाती के सीने पर आ लगा और इस प्रकार हसन खाँ मेवाती युद्ध में देश पर वीरगति को प्राप्त हुये।

चित्र-. अलवर में स्थित हसन खाँ मेवाती की प्रतिमा

2. हुमायूँ (1530-1540 ई. व 1555-1556 ई.) : 1530 ई. में बाबर की मृत्यु के पश्चात हुमायूँ राजसिंहासन पर बैठा। राजसिंहासन पर बैठते समय हुमायूँ के सामने अफगानों, राजपूतों व अपने सगे-संबंधियों के रूप में कई कठिनाइयाँ थी। उसका स्वभाव चंचल था तथा वह अफीम का आदी भी था। एक योग्य अफगान सेनानायक शेरशाह सूरी ने चौसा और कन्नौज के युद्धों में उसे पराजित करके भारत से बाहर खदेड़ दिया। पंद्रह वर्ष के निर्वासन के बाद सूर साम्राज्य के दुर्बल होने पर उसने पुनः दिल्ली पर 1555 ई. में अधिकार कर लिया। 1556 ई. में सीढ़ियों से लुढ़ककर उसकी मृत्यु हो गई।

शेरशाह सूरी : हुमायूँ के राज्यरोहण के दस वर्ष के भीतर ही शेरशाह सूरी ने उसे हराकर हिंदुस्तान से बाहर खदेड़ दिया। शेरशाह सूरी एक योग्य सेनानायक एवं कुशल प्रशासक था। उसके मन में मुगलों के प्रति घृणा का भाव था। वह मुगलों की कमजोरियों को भली-भांति जानता था। उसने 1539 ई. में चौसा तथा 1540 ई. में कन्नौज़ के युद्धों में हुमायूँ को पराजित करके हिन्दुस्तान छोड़ने पर विवश कर दिया। उसके प्रयासों से ही मुगल 1540 ई. से 1555 ई. अर्थात् 15 वर्ष तक हिन्दुस्तान के मानचित्र से गायब रहे। हुमायूँ को हराने के बाद शेरशाह को रायसिन, मारवाड़ एवं कालींजर के राजपूत शासकों के कड़े प्रतिरोध का सामना करना पड़ा। कालिंजर के युद्ध में बारूद फटने से 22 मई, 1545 ई. को शेरशाह की मृत्यु हो गई। उसने 1540 ई. से 1545 ई. तक शासन किया। अपने शासनकाल में उसने सड़कें और सराएं बनवाईं तथा मुद्रा एवं डाक व्यवस्था में कई सुधार किए और भूमि कर व्यवस्था में भी कई सुधार किए।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

3. अकबर (1556 ई.–1605 ई.) : अकबर मुगल सम्राट हुमायूँ तथा हमीदा बानो बेगम का बेटा था। उसका जन्म 1542 ई. में तब हुआ जब उसका पिता दर-दर की ठोकरें खा रहा था। अकबर का जन्म राजपूत रियासत अमरकोट में हुआ। अपने पिता की मृत्यु के बाद 1556 ई. में वह सिंहासन पर बैठा। प्रारम्भ में ही उसका सामना दिल्ली के शासक हेमचन्द्र विक्रमादित्य से पानीपत के मैदान में 1556 ई. में हुआ। इसे पानीपत का दूसरा युद्ध कहा जाता है। हेमचन्द्र वीरता से लड़ा, लेकिन भाग्य से अकबर की जीत हुई। तत्पश्चात् अकबर से भारत की महान 'वीरांगना दुर्गावती' ने लोहा लिया तथा मेवाड़ के 'महाराणा प्रताप' ने तो जीवन भर अकबर से संघर्ष किया व कभी भी अकबर की अधीनता स्वीकार नहीं की। अकबर ने धार्मिक सहनशीलता की नीति का अनुसरण करके तीर्थ-यात्रा कर व जज़िया कर समाप्त कर दिया तथा युद्धबन्दियों को दास बनाने की प्रथा पर रोक लगा दी। इसी तरह से राजपूत नीति के द्वारा राजपूतों से उदारतापूर्ण व मित्रतापूर्ण संबंध स्थापित करके मुगल वंश के शासन को सुदृढ किया तथा विशाल साम्राज्य की स्थापना की।

अकबर का प्रतिरोध

मुगल शासन की स्थापना से ही इसका विरोध प्रारम्भ हो गया था। बाबर का विरोध राणा सांगा, हसन खाँ मेवाती व मेदिनीराय ने किया था। अकबर का विरोध हेमचन्द्र, दुर्गावती और राणा प्रताप ने किया। बाद में औरंगज़ेब की कट्टरता का विरोध करके तो देशभर में मराठों, राजपूतों, जाटों, सतनामियों, सिक्खों व बुंदेलों ने मुगल वंश को ही उखाड़ दिया। अकबर के विरुद्ध हेमचन्द्र, दुर्गावती व राणा प्रताप के संघर्षमयी प्रतिरोधों का वर्णन निम्नलिखित प्रकार से है:

हेमचन्द्र विक्रमादित्य

पानीपत की दूसरी लड़ाई के प्रमुख नायक हेमचन्द्र विक्रमादित्य लगभग तीन शताब्दियों के पश्चात् दिल्ली पर मुस्लिम शासन के बाद एकमात्र अन्तिम हिन्दू राजा थे जो सोलहवीं शताब्दी में दिल्ली के सिंहासन पर बैठे। एक साधारण परिवार में जन्म लेकर वह अपनी सूझबूझ, पराक्रम व प्रतिभा के बल पर प्रधानमंत्री व सेनापति के पद पर सुशोभित हुए। उन्होंने अपने जीवन में 22 युद्ध जीतकर, देश की एकता व अखण्डता को कायम रखने के लिए जीवनभर भरसक प्रयत्न करते हुए, अपने जीवन का बलिदान दिया। अकबर के दरबारी अबुल फज़ल ने भी अपनी पुस्तक 'अकबरीनामा' में हेमू की प्रशंसा की है।

चित्र-2. हेमचन्द्र विक्रमादित्य की पानीपत स्थित प्रतिमा

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

हेमचन्द्र विक्रमादित्य का जन्म राजस्थान के अलवर के पास माछेरी गाँव में 1501 ई. (विक्रमी सम्वत् 1558) में सन्त पूरण दास के घर हुआ था। हेमू का परिवार कुछ समय बाद रेवाड़ी के कुतुबपुर में आकर बस गया था। यहीं आकर हेमू ने संस्कृत, हिन्दी, फारसी तथा अरबी की शिक्षा प्राप्त की। उन्हें बचपन से ही कुश्ती व घुड़सवारी का शौक था। उन दिनों रेवाड़ी एक बड़ा व्यापारिक केन्द्र था तथा ईराक-ईरान के व्यापारियों के लिए यह प्रमुख मण्डी थी। हेमू ने बारूद बनाने वाले प्रमुख तत्त्व 'शोरे' का व्यापार शुरू किया तथा शेरशाह सूरी को बारूद की आपूर्ति करने में अहम भूमिका निभाई।

हेमू प्रधानमंत्री व सेनापति के रूप में : शेरशाह सूरी ने हेमू की कद-काठी व योग्यता देखकर उसे अपनी सेना में भर्ती कर लिया। 22 मई, 1545 ई. को शेरशाह की मृत्यु के बाद उसके पुत्र इस्लामशाह ने गद्दी सम्भाली। इस्लाम शाह ने हेमू की प्रशासनिक क्षमता को पहचाना तथा उसे व्यापार व वित्त सम्बन्धी कार्यों के लिए अपना सलाहकार नियुक्त कर लिया और बाद में हेमू के काम से खुश होकर उसे गुप्तचर विभाग का प्रमुख बना दिया। 1552 ई. में इस्लामशाह की मृत्यु के बाद उसके बारह वर्षीय पुत्र को शासक बनाया गया लेकिन तीन दिन बाद ही उसकी हत्या कर आदिल शाह ने शासन की बागडोर सम्भाल ली।

आदिलशाह एक विलासी, शराबी व निर्बल शासक था। आदिलशाह ने हेमू को शासन की समस्त जिम्मेदारी सौंपकर उसे प्रधानमंत्री तथा सेना का मुख्य सेनापति बना दिया। अधिकतर अफगान सरदारों ने भी आदिलशाह के खिलाफ विद्रोह कर दिया था, लेकिन हेमचन्द्र ने अद्भुत शौर्य तथा वीरता का परिचय देते हुए विरोधियों को हराकर आदिलशाह के राज्य की सुरक्षा की। इसके बाद हेमू को आदिलशाह ने बंगाल भेज दिया। हेमू की अनुपस्थिति का लाभ उठाकर हुमायूँ ने दिल्ली व आगरा पर अधिकार कर लिया। इसी बीच 27 जनवरी, 1556 ई. को हुमायूँ की मृत्यु हो गयी।

हेमू का राज्याभिषेक व उसकी घोषणाएं : मुगल सेना के दिल्ली व आगरा पर अधिकार होने के बाद आदिलशाह ने हेमचन्द्र को लड़ने के लिए भेज दिया। हेमू ने आगरा के मुगल गवर्नर सिकन्दर खाँ उजबेग को परास्त कर दिया। वह विशाल सेना के साथ दिल्ली की ओर बढ़ा। दिल्ली का गवर्नर तर्दीखान बेग, हेमू का नाम सुनकर घबरा गया तथा उसने अकबर से एक विशाल सेना तुरन्त भेजने का आग्रह किया। अकबर के वज़ीर बैरम खाँ ने तुरन्त पीर मोहम्मद के नेतृत्व में विशाल सेना भेजी। भारतीय इतिहास का यह महान निर्णायक युद्ध 6 अक्टूबर, 1556 ई. को तुग़लकाबाद में हुआ। हेमू बड़े साहस व वीरता के साथ लड़ा और मुगल सैनिकों के छक्के छुड़ा दिए। लगभग तीन हज़ार मुगल सैनिक मारे गये। तर्दीबेग मैदान छोड़कर भाग गया। इस युद्ध में हेमू की जीत हुई। आखिर 7 अक्टूबर, 1556 ई. को भारतीय इतिहास का वह विजय दिवस आया जब दिल्ली के

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

सिंहासन पर सैंकड़ों वर्षों की गुलामी के बाद हिन्दू साम्राज्य की स्थापना हुई। दिल्ली के पुराने किले में वैदिक रीति से हेमू का राज्याभिषेक हुआ। लगातार युद्ध जीतने के कारण उन्हें 'विक्रमादित्य' की उपाधि दी गई। नि:सन्देह यह किसी भी भारतीय के लिए अत्यन्त गौरव का दिवस था। अब हेमचन्द्र की ख्याति दूर-दूर तक फैल गई। हेमू की वीरता और साहस को देखकर उसके दरबारियों ने उसे समझाया था कि हेमू से युद्ध करना मूर्खतापूर्ण होगा।

पानीपत की दूसरी लडाई : जहाँ दिल्ली में यह विजय दिवस था, वहीं बैरम खाँ के खेमे में यह शोक दिवस था। आगरा, सम्भलपुर व अन्य स्थानों के सेनानायकों ने हेमू के विरुद्ध लड़ने से मना कर दिया था तथा वे काबुल लौटने की सलाह दे रहे थे परन्तु बैरम खाँ हेमू से युद्ध करने के पक्ष में था।

5 नवम्बर, 1556 ई. को हेमू को समाचार मिला कि मुगल सेना पानीपत के मैदान में पहुँच चुकी है तो हेमू ने भी अपनी पूरी सेना के साथ पानीपत के मैदान में पहुँचकर मुगल सेना को तीन ओर से घेर कर पूरी ताकत से आक्रमण किया। हेमू अपने प्रिय हाथी 'हवाई' पर सवार होकर शत्रु को ललकारता हुआ सैनिकों का मनोबल बढ़ा रहा था। अकबर को इस युद्ध में, पानीपत से आठ मील दूर सुरक्षित स्थान पर रखा गया था ताकि यदि मुगल सेना हार जाए तो उसको भगाकर काबुल सुरक्षित ले जाया जा सके। हेमू अपनी सेना का स्वयं नेतृत्व कर रहा था। उसने अपने पराक्रम व शौर्य से मुगल सेना के पाँव उखाड़ दिए। अकबर की सेना में हेमू का भय समा गया था। हेमू अपनी सेना के साथ आगे बढ़ता जा रहा था तभी एक तीर हेमू की बायी आँख में लगा। हेमू बेहोश होकर हाथी के हौदे में गिर पड़ा। अपने सेनापति को न देखकर सेना में भगदड़ मच गई। हेमू की विजय, पराजय में बदल चुकी थी। इस प्रकार, एक तीर ने भारतभूमि पर मुगल सत्ता के उखड़े हुए पाँव फिर से जमा दिए थे।

हेमू को बन्दी बनाकर अकबर के सामने लाया गया तथा उसका सिर धड़ से अलग कर दिया गया। अकबर ने गाजी (काफिरों का मारने वाला) की उपाधि धारण की। हेमू का कटा हुआ सिर काबुल के दिल्ली दरवाजे पर तथा धड़ दिल्ली के पुराने किले के बाहर लटका दिया गया ताकि लोंगों के दिलों मे डर पैदा हो। बैरम खाँ ने विरोधियों की सामूहिक हत्या का आदेश दिया। हेमू के रिश्तेदार व करीबी अफगान समर्थकों को मौत के घाट उतार दिया गया। आज भी गाँव सौदापुर (पानीपत) में हेमू का स्मृति स्थल है।

हेमचन्द्र विक्रमादित्य ने अद्‌भुत शौर्य व वीरता का परिचय देते हुए अपने जीवन में 22 युद्ध जीते एवं 29 दिन तक दिल्ली पर सुशासन किया। हेमू के संघर्ष की परंपरा को रानी दुर्गावती, महाराणा प्रताप, वीर शिवाजी व गुरु गोविन्द सिंह ने आगे बढ़ाया। वह भारत के गगन में एक पुच्छल तारे की तरह था, जो चमका, दमका, धधका तथा अनन्त में विलीन हो गया।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

रानी दुर्गावती

हिन्दुस्तान वीरों व वीरांगनाओं का देश है। इस पवित्र धरती ने न केवल पराक्रमी योद्धाओं को जन्म दिया बल्कि अनेक वीरांगनाओं को भी जन्म दिया, जिन्होंने इस देश को स्वतंत्र कराने, धर्म-संस्कृति की रक्षा करने तथा विदेशी सत्ता को उखाड़ फेंकने में बराबर का योगदान दिया। ऐसी ही एक वीरांगना थी - गढ़मण्डला की 'रानी दुर्गावती' जिसने अपने हाथ में तलवार थामी और रणचण्डी का रूप धारण कर धर्म-संस्कृति व सम्मान की रक्षा के लिए मुगलों से युद्ध किए।

चित्र-3. कालिंजर का किला।

रानी दुर्गावती का जन्म 5 अक्टूबर, 1524 ई. को उत्तरप्रदेश के बांदा में स्थित कालिंजर के किले में हुआ। इनके पिता प्रसिद्ध राजपूत चंदेल सम्राट कीर्ति सिंह थे तथा रानी दुर्गावती इनकी इकलौती सन्तान थी। वह सुन्दर, सुशील, विनम्र, योग्य व साहसी लड़की थी। शौर्य व साहस से परिपूर्ण दुर्गावती ने बाल्यकाल में ही बन्दूक, तीरंदाजी, घुड़सवारी तथा युद्ध कौशल में प्रवीणता प्राप्त कर ली थी। युद्ध-कौशल के साथ-साथ दुर्गावती को वीरतापूर्ण व साहस भरी कहानी सुनने व पढ़ने का भी शौक था। पिता कीर्ति सिंह के साथ रहकर उसने राजकार्य भी सीख लिए थे और उनके काम में भी वह हाथ बँटाती थी। पिता को पुत्री के सर्वगुण सम्पन्न होने पर गर्व था। नाम के अनुरूप तेज, साहस, शौर्य व सुन्दरता के कारण रानी दुर्गावती की प्रसिद्धि चारों ओर फैल गई।

चित्र-4. भारत सरकार द्वारा रानी दुर्गावती पर जारी किया गया डाक टिकट

दुर्गावती के शौर्य, साहस एवं बुद्धिमता से प्रभावित होकर गोण्डवाना राज्य के राजा संग्राम सिंह ने अपने पुत्र दलपतशाह का विवाह उनके साथ करके उन्हें अपनी पुत्रवधू बनाया था। विवाह के एक वर्ष पश्चात् दुर्गावती को एक पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई, जिसका नाम वीर नारायण रखा गया। महाराज संग्राम सिंह की मृत्यु के बाद दलपतशाह को गोण्डवाना का शासक बनाया गया, लेकिन दुर्भाग्य से दलपतशाह का निधन हो गया। दुर्गावती ने पुत्र वीर नारायण का राजतिलक करवा कर उसे राज्य का उत्तराधिकारी घोषित किया और संरक्षिका के रूप में स्वयं शासन का संचालन करने लगी।

दुर्गावती का प्रशासन एवं प्रजा हित के कार्य : रानी दुर्गावती एक कुशल प्रशासक थी। वह राजकार्य में सक्रिय रूप से भाग लेती थी तथा दरबार में सैनिक वेश में ही जाती थी। उसके नेतृत्व में गोण्डवाना राज्य ने बहुत प्रगति की। प्रजा समृद्ध व वैभव-सम्पन्न हो गई। दुर्गावती प्रजा के बीच जाकर उनके सुख-दु:ख का हाल पूछती थी। रानी ने जनता की भलाई के लिए मठ, कुएं, बावड़ियों एवं धर्मशालाओं का निर्माण करवाया। अपने दीवान

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

आधार सिंह के नाम पर आधारताल और बचपन की दासी रामचेरी के नाम पर चेरीताल तथा प्रिय हाथी सरमन के नाम पर हाथी ताल बनवाकर उनकी स्मृति को स्थायी बनाया। उन्होंने नर-बलि, बाल-विवाह, पर्दा-प्रथा, सती-प्रथा व जाति-प्रथा जैसी कुरीतियों से प्रजा को मुक्त किया ।

दुर्गावती का प्रतिरोध : मुगल शासक उत्तर-मध्य भारत में छल-कपट, लूट, अपहरण व अत्याचार कर रहे थे। उनकी गिद्ध दृष्टि से गोण्डवाना कैसे बच सकता था? मालवा के सुलतान बाज़ बहादुर ने भी गोण्डवाना राज्य पर दो बार आक्रमण किया लेकिन वह दोनों युद्धों में हार गया। रानी दुर्गावती का राज्य रीवा और मालवा की सीमा तक फैल गया। रीवा अकबर के सूबेदार आसफ खान के अधीन था और मालवा, आधम खान के अधीन था। आसफ खान ने अकबर को दुर्गावती के खिलाफ उकसाया। अकबर आसफ खान की बातों में आ गया तथा उसने 1564 ई. में आसफ खान को गोण्डवाना पर आक्रमण के आदेश दे दिए। उन दिनों इस राज्य को गढ़ कटंगा के दोहरे नाम से जाना जाता था। अबुल फजल के अनुसार इस राज्य की सीमाएं पूर्व में रत्नपुर से लेकर पश्चिम में रायसिंह तक तथा उत्तर में रीवा से लेकर दक्षिण में 'दक्कन पठार' के किनारे तक फैली हुई थी। आक्रमणकारी मुगल सेना में पचास हजार पैदल व घुड़सवार सेना थी जबकि रानी दुर्गावती की सेना में बीस हजार सैनिक तथा एक हजार हाथी शामिल थे। दुर्गावती ने हमलावरों को आगे बढ़ने से तब तक रोका जब तक की वह घायल नहीं हो गई। वह दो दिनों तक बहादुरी से लड़ती रही। बाद में उसने अपने सम्मान की रक्षा के लिए स्वयं को छुरा घोंप दिया। मुगल सेना गोण्डवाना की राजधानी पर टूट पड़ी। गोण्डवाना का शिशु शासक वीर नारायण भी अपने प्राणों की बलि देने तक बहादुरी से लड़ता रहा। आसफ खान को गोण्डवाना से बड़ी मात्रा में लूट की सामग्री प्राप्त हुई। उसे भारी मात्रा में सोने, चांदी के सिक्के, सोने के बर्तन, रत्न, मोती, मूर्तियां, सोने की बनी हुई पशुओं की आकृतियां व अन्य दुर्लभ वस्तुएं प्राप्त हुई। वीरांगना दुर्गावती ने अपने दुर्गा नाम के अनुरूप अपने देश, धर्म व सम्मान के लिए जीवन का बलिदान कर आने वाली पीढ़ियों के लिए आदर्श प्रस्तुत किया। गौंड राजवंश के इतिहास में जितनी प्रसिद्धि दुर्गावती ने अर्जित की, उतनी उस वंश के किसी अन्य शासक को नहीं मिली। आज भी उनकी याद में अनेक लोक गीत गाए जाते हैं जैसे-

दुर्गावती जब रण को निकली, हाथों में थी तलवारें दो,
धरती कांपी, आकाश हिला, जब हिलने लगी तलवारें दो।
गुस्से से चेहरा तांबा था, आँखों से शरारे उठते थे,
घोड़े की बागें दाँतों में, हाथों में थी तलवारें दो।।

गतिविधि : भारत की वीरांगनाओं-रानी अब्बक्का, दिलेर कौर, केलाड़ी चेनम्मा, रानी ताराबाई, आदि के विषय में विस्तार से जानिए।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

महाराणा प्रताप

सिसोदिया राजपूत वंश के गौरव, सीमित साधनों के बावजूद मेवाड़ को बचाने के लिए आखिरी साँस तक लड़ने वाले तथा अकबर की अधीनता की पेशकश को ठुकराने वाले महान योद्धा महाराणा प्रताप का नाम इतिहास में उनकी वीरता व अथाह देश भक्ति के कारण दर्ज है। उन्होंने मुगलों की सेना के अजेय होने की धारणा को नष्ट करके सभी राजपूत राजाओं को देश-धर्म व संस्कृति की रक्षा के लिए संगठित होने हेतु प्रेरित किया। उनका पूरा जीवन ही संघर्ष की अमर गाथा है। उनके जीवन में विश्राम का नाम तक नहीं था।

महाराणा प्रताप का जन्म 9 मई, 1540 ई. (ज्येष्ठ 3, विक्रम सम्वत् 1597) को कुम्भलगढ़ (राजस्थान) में महाराणा उदय सिंह के यहाँ हुआ था। इनकी माता का नाम जैवन्ताबाई सोनगरा था। उनका बचपन का नाम कीका था। बचपन से ही महाराणा प्रताप बहादुर व दृढ़ निश्चयी थे। सामान्य शिक्षा से लेकर खेलकूद तथा हथियार बनाने की कला सीखने में भी उनकी बहुत रुचि थी। वे धन-दौलत के स्थान पर मान-सम्मान व स्वाधीनता को अधिक महत्व देते थे।

उनके पिता महाराणा उदय सिंह की मृत्यु के बाद 28 फरवरी, 1572 ई. को उन्हें 32 वर्ष की आयु में गोगुन्दा में सिंहासन पर बैठाया गया। अजमेर, बूँदी, जयपुर व अन्य राजपूत राजा भी अकबर की मित्रता के प्रभाव में थे। ऐसी स्थिति हतोत्साहित करने वाली थी लेकिन वे तनिक भी विचलित नहीं हुए। महाराणा प्रताप ने कुम्भलगढ़ और गोगुन्दा को केन्द्र बनाकर समस्त मेवाड़ राज्य को स्वतन्त्र कराने के लिए अपने बड़े-बड़े सरदारों को बुलाकर प्रतिज्ञा ली। उन्होंने कहा कि जब तक चितौड़ पर झण्डा न फहरा दूँ, तब तक चैन से नहीं बैठूँगा। सोने चाँदी के बरतनों का त्याग कर पत्तल में भोजन करूँगा। धरती पर सोऊँगा तथा बाल नहीं कटवाऊँगा। सभी सरदारों ने भी उनके साथ प्रतिज्ञा ली। जनमानस को संगठित करके पहाड़ियों में रहते हुए महाराणा प्रताप ने अपनी शक्ति बढ़ाई।

चित्र-5. राजा रवि वर्मा द्वारा बनाया गया महाराणा प्रताप का चित्र।

क्या आप जानते है? :
बप्पा रावल (8वीं शताब्दी) ने मेवाड़ के सिसोदिया राजवंश की स्थापना की।

मेवाड़ राज्य के सिसोदिया वंश के शासक

शासक का नाम	शासन काल
हम्मीर सिंह	1326-1364 ई.
क्षेत्र सिंह	1364-1382 ई.
लाखा सिंह	1382-1421 ई.
मोकल सिंह	1421-1433 ई.
राणा कुंभा	1433-1468 ई.
उदयसिंह प्रथम	1468-1473 ई.
राणा रायमल	1473-1508 ई.
राणा सांगा	1508-1527 ई.
उदयसिंह द्वितीय	1540-1572 ई.
महाराणा प्रताप	1572-1597 ई.

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

महाराणा प्रताप के शासन के समय अकबर ने अपनी कूटनीति के चलते अधिकतर राजपूत राजाओं को अपने अधीन कर रखा था। ऐसे समय में महाराणा प्रताप के पास दो ही विकल्प थे। साम्राज्यवादी क्रूर तथा चालाक अकबर की अधीनता स्वीकार कर लेना अथवा भारत की स्वाधीनता के लिए अकबर से संघर्ष। महाराणा प्रताप ने संघर्ष का मार्ग अपनाया। अकबर महाराणा प्रताप की बहादुरी, शौर्य व प्रतिज्ञा से भयभीत था। अत: उसने महाराणा प्रताप पर सीधे आक्रमण करने के बजाय मेवाड़ के चारों ओर उनके ऐसे सम्बन्धियों व राजपूतों को शासक बनाया जो उनके विरोधी थे। अकबर ने महाराणा प्रताप को अपने अधीन करने के लिए कई बार प्रयास किया। इसके लिए उसने आमेर के राजा मानसिंह को भी महाराणा प्रताप से मिलने के लिए भेजा। स्वाभिमानी राष्ट्रभक्त महाराणा प्रताप उसके साथ बैठने को भी तैयार नहीं थे। उनका कहना था कि जिन लोगों ने धन व प्रतिष्ठा के लोभ में और भय से यवनों को अपनी कन्या तक दे दी हो, वे उनके साथ कैसे बैठ सकते हैं? ऐसे राजा से संधि करके वे अपने पूज्य बप्पा रावल के वंश को कलंकित नहीं कर सकते थे। इससे मानसिंह तिलमिला उठा तथा अपमान का बदला लेने की बात कहकर चला गया। मानसिंह ने दिल्ली पहुँचकर अकबर को महाराणा प्रताप के विरुद्ध भड़काया।

हल्दी घाटी का युद्ध : हल्दी घाटी का युद्ध भारतीय इतिहास की अमर गाथा है। महाराणा प्रताप को अपने अधीन करने के कई प्रयासों के बावजूद भी अकबर असफल रहा। प्रताप को अब अनुमान हो गया था कि अकबर मेवाड़ पर पूरी ताकत के साथ आक्रमण करेगा और ऐसा हुआ भी। अकबर ने राजा मान सिंह व राणा के विद्रोही भाई शक्ति सिंह को मेवाड़ पर आक्रमण करने के लिए भेजा।

चित्र-6. हल्दी घाटी

अकबर मेवाड़ पर अधिकार करके वहाँ के बहुमूल्य खनिज पदार्थों एवं मेवाड़ से गुजरने वाले व्यापार के रास्ते पर अधिकार करना चाहता था। अकबर को यह भय भी था कि अगर राणा प्रताप सफल हुआ तो अन्य राजपूत राज्य उसका अनुसरण करने लगेंगे। राणा प्रताप को भी यह विश्वास था कि यदि वह अपने उद्देश्य में सफल रहा तो राजपूतों में आत्मविश्वास उत्पन्न होगा तथा वे भी उसका अनुसरण करेंगे।

इधर महाराणा प्रताप भी अपनी सेना के साथ हल्दीघाटी पहुँचे। 18 जून, 1576 ई. को प्रात: हल्दीघाटी के मैदान में युद्ध शुरू हुआ। प्रताप के साथ रावत किसनदास, भीम सिंह डोडिया, रामदास मेड़तिया, भामाशाह, झाला मान और भील सरदार राणा पुंजा आदि थे। चंदावल में घाटी के मुहाने पर भील लोग तीर-कमान के साथ मौजूद थे। उनकी सेना में अफगान बादशाह शेरशाह सूरी का वंशज हाकिम खाँ सूर भी था, महाराणा प्रताप द्वारा

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

उसको मेवाड़ का सेनापति बनाया गया। हल्दीघाटी में दोनों सेनाओं के मध्य घमासान युद्ध हुआ। महाराणा प्रताप के अदम्य साहस व सेना के उत्साह को देखकर मुगल सेना अस्त-व्यस्त हो गयी। मुगल इतिहासकार बदायूँनी ने स्वीकार किया कि, 'मेवाड़ी सेना के आक्रमण का वेग इतना तीव्र था कि मुगल सैनिकों ने भागकर जान बचाई।' हाकिम खाँ सूर हरावल (सेना की सबसे आगे वाली पंक्ति) का नेतृत्व कर रहे थे। वे मेवाड़ के शस्त्रगार के प्रमुख थे। वे हल्दी घाटी के युद्ध मे लड़ते-लड़ते शहीद होकर अमर हो गए। महाराणा प्रताप युद्ध में वीरता से लड़ रहे थे तभी उन्होंने हाथी पर सवार मानसिंह पर अपने भाले से वार किया, परन्तु संयोग से मानसिंह बच गया। उसका हाथी उसे लेकर भाग खड़ा हुआ। इस युद्ध में प्रताप का प्रिय व बहादुर घोड़ा चेतक घायल हो गया।

राणा पुंजा एक परम वीर भील सरदार थे, जो अपनी भील सेना के साथ हल्दीघाटी में लड़े थे। प्रताप ने उन्हें भाई बनाया और 'राणा' की उपाधि प्रदान की।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

प्रताप को शत्रु सेना ने घेर लिया लेकिन वे घबराए नहीं तथा अपनी शक्ति का अभूतपूर्व प्रदर्शन किया जिसे देखकर मुगल सेना में हड़कंप मच गया। अब महाराणा प्रताप ने युद्ध की दिशा को मैदान के बजाय पहाड़ों की ओर मोड़ने का प्रयास किया। तब तक झाला मान ने मुगल सेना को रोके रखा और अपने जीवन का बलिदान दिया। इसी समय दो मुगल सरदारों ने महाराणा प्रताप का पीछा किया। शक्ति सिंह ने यह देखा तो दोनों मुगलों को मार डाला तथा भाई के गले लग गए।

चित्र-7. हल्दी घाटी के युद्ध के दृश्य को दर्शाता एक चित्र

इस युद्ध में मुगल सैनिकों का मनोबल इतना टूट चुका था कि उनमें प्रताप की सेना का पीछा करने का साहस ही नहीं रहा। घायल चेतक ने दम तोड़ दिया। महाराणा प्रताप को अपने प्रिय घोड़े की मृत्यु पर बहुत दुःख हुआ। चेतक की स्मृति में बना चबूतरा आज भी उसकी स्वामी भक्ति का सन्देश दे रहा है।

हल्दीघाटी युद्ध के परिणाम : हल्दीघाटी के युद्ध के बाद प्रताप के नेतृत्व ने जनमानस का विश्वास दृढ़ किया। अब प्रताप, वीर शिरोमणि के रूप में प्रसिद्ध हो गये थे। कविगण महाराणा प्रताप की वीरता की प्रंशसा में रचनाएँ करने लगे थे। राजस्थान की महिलाएँ उनकी वीरता व शौर्य के गीत गाने लगी थीं। देशवासियों में स्वाभिमान का भाव जगने लगा था। नाट्य रूपान्तरण द्वारा प्रताप की शूरवीरता को स्थान-स्थान पर दिखाया जाने

लगा था। राणा का कठिन व संघर्षमय जीवन देखकर वे राजपूत राजा भी शर्मसार होने लगे जिन्होंने मुगलों की अधीनता स्वीकार कर रखी थी। ऐसे राजा अब महाराणा प्रताप के सहयोग का विचार करने लगे थे। इसी बीच, प्रताप के पूर्वजों के मंत्री भामाशाह ने उनसे मिलकर अपनी सारी धन-सम्पत्ति उनको सौंप दी।

अकबर ने शाहबाज खाँ, अब्दुर्रहीम व जगन्नाथ कुशवाहा को प्रताप के विरुद्ध लड़ने भेजा, परन्तु उन सबको भी हार का सामना करना पड़ा। अब प्रताप ने रक्षात्मक की अपेक्षा आक्रामक नीति अपनाई। अक्टूबर, 1582 ई. में प्रताप ने मुगलों के प्रमुख थाने दिवेर पर आक्रमण कर दिया। मुगल सेनानायक सुल्तान खाँ ने आस-पास के सत्रह थानों के थानेदारों को बुला लिया। लेकिन उसको अपनी जान से हाथ धोना पड़ा। इससे मुगल सेना को वहाँ से हारकर भागना पड़ा। इसके बाद प्रताप ने कुम्भलगढ़ सहित आस-पास के सभी मुगल थानों पर अधिकार कर लिया।

महाराणा प्रताप को अपने वश में करने में मुगल सेना की बार-बार असफलता के कारण अब अकबर में प्रताप के विरुद्ध सेना भेजने का साहस नहीं रह गया था। अब चावण्ड को प्रताप ने नई राजधानी बनाई तथा आस-पास के राजाओं को संगठित करने लगे। धीरे-धीरे राजपूत राजा, महाराणा प्रताप के साथ सहयोग करने लगे। महाराणा प्रताप ने अपनी आक्रामक नीति के अंतर्गत उन किलों को पुनः प्राप्त कर लिया, जिन्हें उनके पिता महाराणा उदय सिंह ने अकबर के हाथों गवाँ दिया था। पच्चीस वर्षों तक मुगल सेना के साथ युद्ध करते-करते तथा जीवन में अति संघर्ष के कारण विश्राम न मिलने पर महाराणा प्रताप का शरीर जर्जर हो गया था। 19 जनवरी, 1597 ई. को 57 वर्ष की आयु में उन्होंने अन्तिम साँस ली। चावण्ड में आज भी उनके महलों व भामाशाह की हवेली के खण्डहर देखे जा सकते हैं। चावण्ड के पास बाडोली गाँव में प्रताप का स्मृति स्थल है।

महाराणा प्रताप का आदर्श व्यक्तित्व : महाराणा प्रताप अपने व्यक्तित्व व कृतित्व के कारण जनमानस के प्रिय थे। युद्धों में दिवंगत वीरों के परिवारों को प्रताप ने पिता की तरह स्नेह दिया। प्रताप ने कैद की गई मुगल स्त्रियों को सुरक्षित लौटाकर नारी सम्मान व सुरक्षा का संदेश दिया। उन्होंने पर्यावरण सुरक्षा, जल संरक्षण व जलाशय बनाने की तकनीक का विकास किया। संस्कारी जीवन जीने की दृष्टि से उन्होंने 'व्यवहार आदर्श' जैसा ग्रंथ लिखवाया। प्रताप द्वारा लिखित 'राज्याभिषेक पद्धति' भारतीय शासकों के लिए आदर्श बनी।

महाराणा प्रताप ने संगीत, मूर्तिकला और चित्रकला को संरक्षण दिया। देश की समृद्धि के लिए धातुओं की खदानों की सुरक्षा की। सभी सम्प्रदायों का आदर किया। जनजाति के मुखियाओं को सम्मान देकर समरसता का संदेश दिया। उदयपुर के निकट हरिहर जैसे मंदिर उनके काल में शैव व वैष्णव धर्म की एकता को दर्शाते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि राष्ट्रप्रेम, सर्वधर्म सद्भाव, सहिष्णुता, करुणा, स्वाधीनता के लिए संघर्ष, नीतिगत आदर्शों का पालन, मानवाधिकार व नारी सम्मान, पर्यावरण व जल संरक्षण एवं सर्वमान्य को आदर महाराणा प्रताप की महानता के प्रमाण हैं।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

4. जहाँगीर (1605–1627 ई.) : 1605 ई. में अकबर की मृत्यु के बाद जहाँगीर राजसिंहासन पर बैठा। वह अत्यंत विलासी प्रवृत्ति का था। उसके शाही हरम में अनेक पत्नियाँ व उप-पत्नियाँ थीं। वह बहुत अहंकारी था तथा सदा चापलूसों से घिरा रहता था। वह अपने पिता के जीवन काल में ही सम्राट बनना चाहता था। उसने ही अबुल फज़ल की हत्या करवाई। जहाँगीर की प्रिय पत्नी नूरजहाँ थी तथा उसके शासन पर नूरजहाँ का प्रभाव दिखाई देता है। 1627 ई. में जहाँगीर की मृत्यु हो गई। जहाँगीर ने सिक्खों के पंचम गुरु अर्जुनदेव की हत्या करवाई। इस घटना के बाद अर्जुनदेव के पुत्र एवं छठे सिक्ख गुरु श्री हरगोबिन्द सिंह ने सिक्खों को सैन्य-शक्ति के रूप में संगठित किया।

5. शाहजहां (1627–1658 ई.) : जहाँगीर का बेटा शाहजहाँ 1627 ई. में सिंहासन पर बैठा। वह बहुत महत्वाकांक्षी था तथा उसने शासक बनने के लिए अपने पिता के समय में ही विद्रोह कर दिया था। शाहजहाँ में सहनशीलता का अभाव था। वह धार्मिक रूप से इस्लामिक रिवाज़ों को दृढ़ता से पालन करता था। उसके समय में बनारस, प्रयाग, कश्मीर व गुजरात के मंदिर तोड़े गए। जोधपुर का राजा जसवंत सिंह तथा जयपुर का राजा जयसिंह उसके मनसबदार थे। यद्यपि उसने हिंदुओं को पदों से नहीं हटाया लेकिन उन्हें ऊंचे पद भी नहीं दिए। 1657 ई. में शाहजहाँ बीमार हो गया जिसके कारण उसके चारों बेटों दारा, शुजा, मुराद व औरंगज़ेब में उत्तराधिकार का युद्ध आरम्भ हो गया। शाहजहाँ अपने बड़े पुत्र दारा शिकोह को सिंहासन पर बैठाना चाहता था, जो धार्मिक रूप से सहनशील व उदार था। उसने उपनिषदों का फारसी में अनुवाद भी किया था। लेकिन औरंगज़ेब ने अपने सभी भाइयों को पराजित करके उनकी हत्या कर दी तथा अपने पिता को कारागार में डालकर स्वयं सम्राट बन गया।

6. औरंगज़ेब (1658 ई.–1707 ई.) एवं उत्तरवर्ती मुगल शासक : उत्तराधिकार का युद्ध जीतकर तथा अपने पिता को कैद करके औरंगज़ेब 1658 ई. में सम्राट बना। वह कट्टर सुन्नी मुसलमान था। उसने अकबर द्वारा हिंदुओं के प्रति अपनाई गई धार्मिक सहनशीलता की नीति व राजपूतों के प्रति मित्रतापूर्ण नीति का त्याग कर दिया। 'तीर्थ-यात्रा कर' व 'जज़िया कर' पुनः लगा दिए, हिंदुओं को ऊंचे पदों से हटा दिया, धार्मिक मेलों पर रोक लगा दी, बनारस व मथुरा के मंदिर तोड़कर वहां मस्जिदें बनवाई जिसके फलस्वरूप जाटों, सतनामियों, मराठों, राजपूतों, सिक्खों व बुंदेलों के विद्रोह हुए। सिक्खों के नौवें गुरु तेगबहादुर को मृत्यु दण्ड दिया गया। उसकी इन नीतियों व कार्यों के फलस्वरूप मुगलवंश का पतन आरम्भ हुआ तथा 1707 ई. में उसकी मृत्यु के साथ ही मुगल साम्राज्य बिखर गया। यद्यपि मुगल 1857 ई. तक शासन करते रहे, लेकिन उनकी सत्ता केवल दिल्ली तक ही सीमित होकर रह गई। परवर्ती ग्यारह मुगल शासक निर्बल व अयोग्य सिद्ध हुए। 18वीं शताब्दी में मराठे एक अखिल भारतीय शक्ति के रूप में उभरे तथा वर्षों तक दिल्ली पर उनका प्रभुत्व छाया रहा।

©BSEH Bhiwani
Not to be republished

आओ याद करें :

1. प्रसिद्ध मुगल इतिहासकार अहमद यादगार के अनुसार हरियाणा के कैथल जिले के मोहन सिंह मंढार ने मुगल शासक बाबर की सेना का प्रबल प्रतिरोध किया था।
2. हेमचंद्र विक्रमादित्य के पिता का नाम संत पूर्णदास था।
3. हेमचंद्र विक्रमादित्य का राज्याभिषेक 7 अक्टूबर, 1556 ई. को हुआ।
4. महाराणा प्रताप का जन्म 9 मई, 1540 ई. को कुंभलगढ़, राजस्थान में हुआ। उनके पिता का नाम महाराणा उदय सिंह एवं माता का नाम जैवन्ता बाई सोनगरा था।
5. महाराणा प्रताप की सेना का प्रमुख हाकिम खान सूर था। वह हल्दीघाटी युद्ध में मुगल सेना से लोहा लेते हुए शहीद हो गया।
6. मेवाड़ के प्रसिद्ध धनी सेठ भामाशाह ने अपनी समस्त धन-संपत्ति महाराणा प्रताप को दे दी थी। प्रताप ने इस धन-संपदा से सशक्त सेना का निर्माण किया।
7. रानी दुर्गावती के पति दलपत सिंह गोंडवाना के राजा थे। उनके पुत्र का नाम वीर नारायण सिंह था।
8. रानी दुर्गावती ने मालवा के शासक बाज बहादुर को दो बार पराजित किया था।

रिक्त स्थान भरें :

1. हल्दीघाटी युद्ध में महाराणा प्रताप को भील सरदार................ने सहायता दी थी।
2. दुर्गावती................की रानी थी।
3. महाराणा प्रताप ने................को अपनी राजधानी बनाया।
4. मुगल ....से भारत आए थे।
5. राजस्थान के प्रसिद्ध सिसोदिया वंश की स्थापना................ने की थी।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

उचित मिलान करें :

1.	दिल्ली का अंतिम हिन्दू सम्राट	राणा सांगा
2.	कालिंजर का किला	औरंगज़ेब
3.	जज़िया कर	रानी दुर्गावती
4.	खानवा का युद्ध	हेमचन्द्र विक्रमादित्य

आओ विचार करें :

1. हेमचन्द्र विक्रमादित्य के विषय में टिप्पणी लिखें।
2. हल्दीघाटी युद्ध का विस्तृत वर्णन कीजिए।
3. दुर्गावती के प्रतिरोध का वर्णन कीजिए।
4. महाराणा प्रताप के जीवन पर एक निबंध लिखिए।
5. मोहन सिंह मंढार का मुगलों से संघर्ष पर एक नोट लिखें।
6. हाकिम खाँ सूर एवं हसन खान मेवाती के मुगलों के विरुद्ध प्रतिरोध में क्या भूमिका थी?

आओं करके देखें :

1. यदि आप महारानी दुर्गावती की सेना में एक सैनिक होते तो विजय दिलाने के लिए आप क्या प्रस्ताव करते? वर्णन कीजिए।
2. हेमचन्द्र विक्रमादित्य एवं महाराणा प्रताप के मुगलों से संघर्ष के कारणों की सूची बनाएँ।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

अध्याय

2

सिक्ख गुरु परम्परा

सिक्ख धर्म के उदय और विकास के क्रम में दस गुरु हुए हैं। प्रथम गुरु नानक देव और दसवें गुरु गोबिंद सिंह थे। इतिहासकार कनिंघम के शब्दों में, ''गुरु नानक ने सुधार के सच्चे सिद्धांतों का साक्षात्कार किया और ऐसे व्यापक आधार पर धर्म की नींव रखी जिसके द्वारा गुरु गोबिंद सिंह ने अपने देशवासियों में एक नवीन राष्ट्रीयता की भावना को जन्म दिया। उन्होंने उत्तम सिद्धांतों को ऐसा व्यावहारिक रूप दिया कि उनके धर्म में छोटी-बड़ी जातियों को जीवन के सभी क्षेत्रों में समान मर्यादा प्राप्त हुई।'' पंजाब में भक्ति आंदोलन के संतों में श्री गुरु नानक देव का नाम सर्वोपरि है। उनके शिष्यों को सिक्ख नाम से जाना जाता है। गुरु नानक के प्रभाव से पंजाब की जनता के साथ-साथ देश को भी एक नई दिशा मिली। उन्होंनें समानता, बंधुता, ईमानदारी तथा सृजनात्मक शारीरिक श्रम के द्वारा जीविका-उपार्जन पर आधारित नई सामाजिक व्यवस्था स्थापित की। शुरू से ही नानक का संदेश कबीर, दादू, चैतन्य तथा अन्य संतों के समान होते हुए भी मौलिक रूप में अलग प्रकार का था। कालंतर में गुरु नानक की विचारधारा ही सिक्ख धर्म बन गइ। दूसरे गुरु अंगददेव ने एक अलग लिपि अपनाई जिसे गुरुमुखी कहा जाता है। पांचवें गुरु अर्जुनदेव ने सिक्खों के लिए पवित्र 'आदिग्रंथ' तैयार किया जिसे 'गुरु ग्रंथ साहिब' भी कहा जाता है। इस ग्रंथ में गुरुओं की वाणी के साथ अनेक संत कवियों की रचनाएं भी जोड़ी गई। छठे गुरु हरगोबिंद ने सिक्खों को सैन्य स्वरूप प्रदान किया। दसवें गुरु गोबिंदसिंह ने 'खालसा' की स्थापना कर सिक्ख धर्म को एक अलग पहचान दे दी। उन्होंने सिक्ख गुरु परंपरा को समाप्त कर पवित्र ग्रंथ 'गुरु ग्रंथ साहिब' को ही सिक्खों के लिए गुरु घोषित कर दिया। सिक्ख धर्म का इतिहास वीरता और बलिदानों का रहा है।

सिक्ख धर्म में दस गुरु हुए हैं जिनके नाम और काल-क्रम निम्न प्रकार से हैं:

1.	श्री गुरु नानक देव	1469-1539 ई.
2.	श्री गुरु अंगददेव	1539-1552 ई.
3.	श्री गुरु अमरदास	1552-1574 ई.
4.	श्री गुरु रामदास	1574-1581 ई.
5.	श्री गुरु अर्जुनदेव	1581-1606 ई.
6.	श्री गुरु हरगोबिंद	1606-1644 ई.
7.	श्री गुरु हरराय	1644-1661 ई.
8.	श्री गुरु हरकिशन	1661-1664 ई.
9.	श्री गुरु तेगबहादुर	1664-1675 ई.
10.	श्री गुरु गोबिन्दसिंह	1675-1708 ई.

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

1. गुरु नानक देव (1469 ई.-1539 ई.) : गुरु नानक का जन्म 1469 ई. में पंजाब के तलवंडी नामक स्थान पर हुआ। उनके पिता का नाम महता कालू चंद तथा माता का नाम तृप्ता था। तलवंडी गांव को अब 'ननकाना साहिब' के नाम से जाना जाता है जो अब पाकिस्तान में है। नानक का जन्म कार्तिक मास की पूर्णिमा के दिन हुआ था। यह बालक बड़ा होकर एक 'आध्यात्मिक गुरु' के रूप में प्रसिद्ध हुआ, जिन्हें आज हम 'गुरु नानक' देव के नाम से जानते हैं। जब नानक सात वर्ष के हुए तो उन्हें शिक्षा के लिए पण्डित गोपालदास की पाठशाला में भेजा गया। बाल्यकाल से ही उनकी रुचि अध्यात्म में थी। एक बार उनके पिता ने उन्हें बीस रुपए देकर व्यापार करने के लिए भेजा, तो उन्होंने रास्ते में कुछ भूखे साधुओं को भोजन कराने में ही अपना सारा धन लगा दिया। पिता के पूछने पर उन्होंने कहा कि मैंने तो सच्चा सौदा किया है।

गुरुनानक का विवाह सुलखनी से हुआ, जो बटाला की रहने वाली थी। उनके दो बेटे हुए-श्रीचन्द और लख्मीदास। उनकी बहन नानकी, जो उनसे पाँच वर्ष बड़ी थीं, अपने पति जयराम के साथ सुल्तानपुर में रहती थी। यह वह समय था, जब विदेशी आक्रमणों के कारण सामाजिक व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो चुकी थी। बहुत से हिंदुओं को तलवार के बल पर मुसलमान बनाया गया था, जबकि कुछ जजिया-कर से बचने के लिए मुसलमान बन गए थे। उत्तर भारत में राज-आश्रय न मिलने के कारण साहित्य, कलाएँ और सामाजिक ढाँचा नष्ट हो रहा था। इन दयनीय परिस्थितियों ने नानक जैसे संवेदनशील पुरुष को प्रभावित किया। धर्म पर इन खतरों को देखते हुए उन्होंने समाज को संगठित और जागरूक करने के लिए उपदेश देने प्रारंभ किए।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

चित्र-1. गुरुद्वारा ननकाना साहिब

गुरु नानक देव की शिक्षाएँ : मध्यकालीन भारतीय भक्ति आंदोलन के गुरु नानक एक प्रमुख संत थे। गुरु नानक ने भारत, मध्य एशिया और अरब देशों का भ्रमण किया था। गुरु नानक गृहस्थ जीवन को भक्ति के मार्ग में बाधा नहीं मानते थे। वे अपना अधिकांश समय साधना और उपदेश देने में बिताते थे। गुरु नानक ने समाज में सुधार किए। गुरु नानक के उपदेश व्यावहारिक एवं समाज कल्याण के लिए थे। उनके उपदेशों का सार था कि नाम जपो, किरत करो, वंड छको। उन्होंने कहा कि संसार में न कोई हिंदू है और न ही कोई मुसलमान अपितु सब उस एकमात्र परम शक्तिशाली परमात्मा की संतान हैं, जो अनंत, सर्वशक्तिमान, सत्य, कर्ता, निर्भय, निर्गुण और अजन्मा है। उनका उपदेश था कि हमें जातीय भेदभाव से दूर रहकर प्रेम के साथ रहना चाहिए।

बाला और मरदाना गुरु नानक देव के दो प्रमुख साथी थे। मरदाना गुरु नानक देव से दस वर्ष बड़े थे। वह गुरु नानक देव की एशिया की यात्रा में उनके साथ रहे। मरदाना रबाब बजाते थे। उन्होंने जीवनपर्यन्त गुरुजी का साथ दिया। 1534 ई. में उनका निधन हुआ। जब बाबर ने हिंदुस्तान पर आक्रमण करके मंदिरों का विनाश किया और लोगों को जबरन मुसलमान बनाया, तो ये घटनाएँ नानक ने अपनी आँखों से देखी थीं। इनका दुखपूर्ण विवेचन 'बाबरवाणी' नाम से गुरु ग्रंथ साहिब में अंकित है। सन् 1522 ई. में वे करतारपुर में आ बसे और अपने अंतिम समय तक वहीं रहे। यहाँ उन्होंने 'वार-मल्हार', 'वार-माझ', 'वार-आसा', 'जपुजी', 'ओंकार', 'पट्टी' और 'बारह-माहा' आदि वाणियों की रचना की। उनका कहना था कि परमात्मा सर्व-व्यापक है। उनका यह संदेश उन विचारधाराओं से मेल नहीं खाता था, जो परमात्मा को एक ही दिशा में या एक ही स्थान में होने का दावा करते थे।

2. गुरु अंगद देव (1539 ई.–1552 ई.) : सन् 1538 ई. में गुरु नानकदेव ने गुरु अंगद देव को अपना उत्तराधिकारी बनाया। उन्होंने गुरु नानकदेव की वाणी का संकलन किया। यह वह काल था जब समाज के निर्धन लोगों को भोजन का लालच देकर मुसलमान बनाने का प्रयास किया जाता था। इस काम के लिए मुसलमान शासक सूफियों को बड़े-बड़े भूमि क्षेत्र अनुदान रूप में देते थे जिनमें इन सूफियों की खानकाहें होती थीं। यहाँ लोगों के लिए निःशुल्क खाने की व्यवस्था की जाती थी। ऐसे में समाज के कुछ लोग प्रलोभन में आकर मुसलमान बन जाते थे, जो समाज के लिए अच्छा नहीं था। गुरु अंगद देव ने गुरु नानकदेव द्वारा स्थापित लंगर व्यवस्था को अधिक व्यापक रूप प्रदान किया। सभी लोग एक पंक्ति में बैठकर खाना खाते थे। वहां ऊँच-नीच का भेद नहीं रहता था। उनकी धर्मपत्नी स्वयं इस व्यवस्था की देख-रेख करती थी।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

पंजाब में मुगलों का प्रभाव बढ़ने के कारण अखाड़ों की परंपरा छिन्न-भिन्न हो गई थी। इसे गुरु अंगददेव ने पुनः स्थापित करते हुए खडूर साहिब में एक अखाड़ा स्थापित किया, जहाँ उनके शिष्य व्यायाम करते थे। एक और महत्वपूर्ण कार्य जो गुरु अंगद ने किया, वह था गोविंदवाल की स्थापना। सन् 1546 ई. में उन्होंने अपने विश्वसनीय शिष्य भाई अमरदास को व्यास नदी के तट पर एक नया गाँव बसाने का कार्य सौंपा। गुरुजी ने भाई अमरदास को अपना उत्तराधिकारी भी नियुक्त कर दिया था। गोएंदा नाम के एक व्यापारी को लगता था कि यह स्थान दिल्ली और लाहौर को जोड़ने वाले मार्ग पर स्थित था इसलिए आने वाले समय में यह एक प्रमुख नगर होगा। उसी के नाम से इस स्थान का नाम गोविंदवाल पड़ा है। 29 मार्च, 1552 ई. में गुरु अंगददेव का देहांत हो गया।

3. गुरु अमरदास (1552 ई.–1574 ई.) : सन् 1552 ई. में जब गुरु अमरदास सिक्ख गुरु बने, उस समय उनकी आयु 73 वर्ष की थी। गुरु अंगददेव ने गोविंदवाल में एक बावड़ी की नींव रखी थी, जिसे गुरु अमरदास ने 1552 ई. में पूरा कर दिया। इसमें 84 सीढ़ियाँ हैं और गुरु अमरदास ने यह घोषणा की कि जो भी व्यक्ति चौरासीवीं सीढ़ी पर स्नान करेगा, वह 84 लाख योनियों के जन्म-मरण के बंधन से मुक्त हो जाएगा।

उन्होंने लंगर-व्यवस्था को और विस्तृत रूप प्रदान करते हुए "पहले पंगत फिर संगत" के विचार को स्थापित किया। इस परंपरा के अनुसार गुरु के दर्शन से पूर्व सभी को लंगर में भोजन करना होता था। एक और कार्य जो इनकी दूरदर्शिता को प्रमाणित करता है, वह है इनके द्वारा मंजी-प्रथा की स्थापना। इन्होंने आसपास के क्षेत्रों को 22 भागों में बांटकर अपने 22 विश्वासपात्र शिष्यों को धर्म प्रसार के लिए नियुक्त किया। ये शिष्य मंजी (चारपाई) पर बैठकर लोगों को गुरुओं के संदेश सुनाया करते थे, इसलिए इस प्रथा को मंजी-प्रथा कहा जाता है।

समाज सुधार की दृष्टि से उनका एक और उल्लेखनीय योगदान है। उस समय में इस्लामी प्रभाव के कारण स्त्रियाँ या तो बुर्का पहनती थीं अथवा पर्दे में रहती थीं। गुरु अमरदास का कहना था कि यह प्रथा न केवल स्त्रियों के लिए भेदभाव से भरी है बल्कि इसके कारण स्त्रियों का शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास भी नहीं हो पाता। यही कारण है कि उनकी लंगर व्यवस्था में यह आदेश था कि कोई भी महिला इस पर्दा-प्रथा को स्वीकार नहीं करेगी। उन्होंने 95 वर्ष की आयु तक समाज व धर्म के उत्थान का कार्य किया और सन् 1574 ई. में अपनी मृत्यु से पूर्व उन्होंने अपने दामाद भाई जेठा को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर दिया। वे चौथे गुरु रामदास के नाम से जाने जाते हैं।

क्या आप जानते है?

गुरु ग्रंथ साहिब में प्रभु का उल्लेख वाहेगुरु के साथ-साथ हरि और राम आदि नामों से भी किया गया है।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

4. गुरु रामदास (1574 ई.–1581 ई.) : चौथे गुरु रामदास 1574 ई. से 1581 ई. तक सात वर्ष गुरु गद्दी पर विराजमान रहे। उनके काल में अमृतसर नगर की स्थापना हुई। अकबर ने गुरु अमरदास की बेटी सुकुमारी भानी को कुछ गाँवों की भूमि भेंट में दी थी। गुरुजी ने इस भूमि पर विकास कार्यों के लिए रामदास को वहां भेजा था। उन्होंने वहाँ संतोखसर और अमृतसर नामक दो सरोवरों की खुदाई का काम आरम्भ करवा दिया। गुरु–गद्दी पर आसीन होने के बाद गुरु रामदास वहीं जाकर रहने लगे। नगर के लिए बहुत से धन की आवश्यकता थी। गुरु रामदास ने अपने शिष्यों को इस उद्देश्य से धन एकत्र करने के लिए भेजा। इन शिष्यों को मसंद कहा जाता है। अमृतसर सरोवर के चारों ओर लोग बसने लगे और आज हम इसे एक प्रसिद्ध नगर के रूप में जानते हैं। गुरु रामदास ने अपने छोटे पुत्र गुरु अर्जुनदेव को अपना उत्तराधिकारी बनाया और इनके पश्चात् ये गद्दी पैतृक रूप से दी जाने लगी।

चित्र-2 अमृतसर सरोवर

5. गुरु अर्जुनदेव (1581 ई.–1606 ई.) : गुरु अर्जुनदेव ने अमृतसर में हरमंदिर साहिब के निर्माण कार्य की गति तेज़ कर दी। सन् 1600 ई. तक हरमंदिर साहिब के निर्माण का कार्य पूरा हो गया। इसके अतिरिक्त गुरु अर्जुनदेव ने 1590 ई. में रावी और व्यास नदियों के बीच में तरनतारन नाम का नगर भी बसाया। यहाँ भी पहले एक सरोवर का निर्माण करवाया गया था। तरनतारन नाम का भाव है कि जो भी व्यक्ति इस सरोवर में स्नान कर लेता है, वह भवसागर से तर जाता है। गुरुजी ने जालंधर के निकट एक और नगर बसाया जिसका नाम करतारपुर अर्थात् ईश्वर का नगर है। सन् 1595 ई. में गुरुजी के यहाँ एक पुत्र ने जन्म लिया जिसका नाम हरगोविंद रखा गया और इससे प्रसन्न होकर उन्होंने व्यास नदी के तट पर एक और नगर की स्थापना की जिसका नाम हरगोविंदपुर रखा। तरनतारन में कुष्ठ रोगियों के लिए अलग से एक बस्ती बसाई गई, जहाँ उनके लिए नि:शुल्क भोजन, वस्त्रों और औषधियों की व्यवस्था की जाती थी। इन सभी स्थानों पर लंगर चलाने के लिए धन की आवश्यकता थी, जिसके लिए गुरु अर्जुनदेव ने शिष्यों से अपनी आय में से दस प्रतिशत राशि धर्म कार्यों के लिए निकालने को कहा। इस भाग को दसौंध कहते हैं। इससे मिलने वाले धन ने धर्म प्रसार में योगदान दिया तथा गुरुजी की प्रतिष्ठा को और अधिक बढ़ा दिया।

एक और महत्वपूर्ण कार्य जो गुरु अर्जुनदेव ने किया वह था 'आदि ग्रंथ' का संकलन। उन्होंने इसमें पहले के गुरुओं की वाणी का संग्रह किया । इसमें उन्होंने कबीर, रविदास, फरीद इत्यादि संतों की वाणियों को भी सम्मिलित किया। उन्होंने अपने शिष्यों को सभी प्रकार के मादक पदार्थों के सेवन से दूर रहने का उपदेश दिया।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

यह वह समय था जब दिल्ली में अकबर का शासन था जो पहले के मुसलमान राजाओं से कम कट्टर था। उसके काल में हिन्दुओं को अपने धर्म के अनुसार जीने की स्वतंत्रता थी। यह बात उस समय के कुछ सूफियों, इमामों और उलेमाओं को अच्छी नहीं लगती थी और वे सब इसी ताक में थे कि कब यह शासन समाप्त हो और सभी हिन्दुओं पर मुसलमान बनाने के लिए दबाव बनाया जा सके। उनकी यह इच्छा तब पूरी हुई जब सन् 1605 ई. में अकबर की मृत्यु हुई और उसका बेटा जहांगीर शासक बना। उसका बड़ा बेटा खुसरो मिर्जा उस समय लगभग उन्नीस वर्ष का था, जिसे लगता था कि वह अपने दादा अकबर का चहेता था इसलिए उसे गद्दी मिलनी चाहिए। जहांगीर से विद्रोह करने के लिए वह अपने साथियों के साथ आगरा से निकला और अपनी सेना बनाता हुआ लाहौर की ओर चल पड़ा। रास्ते में जब वह तरनतारन पहुंचा तो उसने गुरु अर्जुनदेव से भेंट की और लाहौर पर अपना अधिकार करने के लिए पहुंच गया। जहांगीर अपनी विशाल सेना लेकर लाहौर पहुंचा और अपने बेटे और उसके साथियों को पकड़कर दिल्ली ले आया। उसके सभी साथियों को भयंकर यातनाएं देकर मरवा दिया गया और जहांगीर ने अपने बेटे को अंधा करवा दिया। जहांगीर एक कट्टर मुसलमान था। उसने गुरुजी को बंदी बना लिया और उन पर राजद्रोह करने के अपराध में भारी आर्थिक जुर्माना लगा दिया। सन् 1606 ई. में गुरुजी को बहुत-सी शारीरिक यातनाएं देकर शहीद कर दिया गया।

6. गुरु हरगोबिंद (1606 ई.-1644 ई.) : गुरु अर्जुनदेव की शहादत के बाद उनके इकलौते पुत्र गुरु हरगोबिंद ने गुरु गद्दी संभाली। जब 1609 ई. में जहांगीर को पता लगा कि सिक्खों की गतिविधियाँ कम होने के स्थान पर बढ़ गई हैं, तो उसने गुरुजी को सिक्खों पर लगाए गए जुर्माने को न भरने के अपराध में ग्वालियर के किले में कैद कर लिया। उन्हें लगभग दो वर्ष तक बंदी के रूप में रखा गया और 1611 ई. में मुक्त कर दिया गया। इसके बाद गुरुजी पंजाब लौटे और उन्होंने तुरंत ही सिक्खों को संगठित करना आरंभ कर दिया।

अभी तक के सभी गुरुओं ने भारतीय गुरु-शिष्य परंपरा की भांति आध्यात्मिक ज्ञान पर अधिक बल दिया था। किन्तु इन्होंने उस समय के अपने शिष्यों में आत्मविश्वास और निडरता के गुण जागृत किए। इन्होंने अकाल तख्त का निर्माण करके अपने शिष्यों को आध्यात्मिक और व्यावहारिक शिक्षा दी। इन्होंने दो तलवारें मीरी व पीरी धारण कीं, जो आध्यात्मिक और सांसारिक इन दोनों पक्षों का प्रतीक थीं। सिक्खों को शस्त्रधारी बनाने का उनका मुख्य उद्देश्य मुगलों से अपने धर्म व जनता की रक्षा करना था।

चित्र-3. गुरु हरगोबिन्द द्वारा निर्मित श्री अकाल तख्त

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

इन्होंने सिर पर कलगी धारण कर ली और अपने मसंदों को ये निर्देश दिए कि वे धन की अपेक्षा घोड़ों और शस्त्रों का दान एकत्र करें। शीघ्र ही उनके पास विशाल संख्या में घोड़े और शस्त्र एकत्र हो गए। इन्होंने अपने लिए 52 अंगरक्षक भी नियुक्त किए। उनके आह्वान पर सारे पंजाब से लोगों ने अपने बच्चों को गुरु की सेवा के लिए भेजा ताकि धर्म की रक्षा हो सके। गुरुजी ने पाँच सौ नौजवानों को सौ-सौ के पाँच जत्थों में बाँट दिया। इनके जत्थेदार थे- विधिचंद, लंगाह, पीराना, जेठा और पैरा। इन्होंने एक विशेष संगीत मंडली बनाई, जो रात को हरिमंदिर की परिक्रमा करते हुए, हाथों में मशालें लिए ढोलक की धुन पर वीर-रस के गीत गाती थी।

आध्यात्मिक शिक्षा देने के लिए गुरुजी हरमंदिर साहिब का उपयोग करते थे। इन्होंने हरिमंदिर श्री के सामने पश्चिम की ओर अकाल तख्त का निर्माण करवाया। इसमें इन्होंने बारह फुट ऊँचे एक चबूतरे का निर्माण करवाया, जो दिल्ली के मुगल सिंहासन से कुछ ऊँचा बनाया गया था। इस पर आसीन होकर वे अपने शिष्यों को राजनीतिक शिक्षा देते थे और अपने शिष्यों को अस्त्र-शस्त्र भी यहाँ प्रदान करते थे। इस तख्त के निकट ही अखाड़ा था, जिसमें व्यायाम करने के लिए वे सिक्खों को प्रेरित करते थे। यह तख्त मुगलों के लिए मानों एक चुनौती के रूप में निर्मित किया गया था।

इनके पाँच पुत्र थे - गुरदित्ता, अनीराय, अटलराय, तेगबहादुर और सूरजमल। सिक्खों में उत्साह का संचार करने के लिए और धर्म के प्रसार के लिए इन्होंने कश्मीर, उत्तर प्रदेश और पंजाब के विभिन्न क्षेत्रों में यात्राएँ की। इतिहासकार मानते हैं कि जहाँगीर ने गुरुजी की ग्वालियर के कारागार से मुक्ति के पश्चात् पंजाब की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया, लेकिन जब शाहजहाँ ने दिल्ली का शासन संभाला तो एक बार फिर से धर्म और अधर्म के बीच संघर्ष आरंभ हो गया। जब गुरुजी को लगा कि अब उनका अंतिम समय निकट आ गया है तो इन्होंने अपने पौत्र हरराय को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर दिया।

7. गुरु हरराय (1644 ई.-1661 ई.) : शांत और कोमल स्वभाव के गुरु हरराय ने, गुरु हरगोविंद के देहावसान के पश्चात् गुरु परंपरा को आगे बढ़ाया। इन्होंने विभिन्न प्रदेशों की यात्राएँ करके धर्म का प्रचार किया। उनके जीवनकाल में शाहजहाँ के बेटों में उत्तराधिकार के लिए युद्ध हो रहा था। इनमें दारा शिकोह उदार प्रवृत्ति का स्वामी था जो हिंदू धर्म से प्रभावित था। सन् 1658 ई. में सामूगढ़ के युद्ध में हारने के बाद वह पंजाब की ओर भाग खड़ा हुआ। उस समय गुरु हरराय ने उसे आशीर्वाद दिया। कुछ उलेमाओं का मानना था कि दारा शिकोह एक काफिर है। औरंगज़ेब ने दारा शिकोह को इस्लाम विरोधी घोषित करके उसकी हत्या कर दी। औरंगज़ेब ने दिल्ली में गद्दी संभालने पर गुरु हरराय को दिल्ली बुलाया तो उन्होंने अपने बड़े बेटे रामराय को भेज दिया। जब औरंगज़ेब ने उनसे 'आसा दी वार' में लिखे श्लोक का अर्थ पूछा -

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

मिट्टी मुसलमान की पैरें पइ कुमियार,
घड़ भांडे इटां कीयां जलदी करे पुकार।

(मुसलमान की कब्र की मिट्टी कुम्हार के पैरों के नीचे कुचली जाकर, जब घड़े, बर्तन और ईंट बनकर, पंजावे में डाली जाने लगी, तो आग से डरकर चीखने लगी।)

तो रामराय ने चतुराई से कहा कि मुसलमान शब्द भूल से आ गया है, यहाँ वास्तविक शब्द बेईमान है। इससे औरंगजेब तो संतुष्ट हो गया लेकिन गुरु हरराय अपने बेटे से नाराज हो गए। उन्हें लगा कि उनके बेटे ने गुरु नानक की वाणी को बदल कर कायरता की है। इन्होंने अपने छोटे बेटे हरकिशन को अपना उत्तराधिकारी बना दिया।

8. गुरु हरकिशन (1661 ई.–1664 ई.) : जब गुरु हरकिशन गुरु गद्दी पर बैठे तो उनकी आयु केवल पाँच वर्ष और तीन महीने की थी इसलिए उन्हें 'बाल गुरु' भी कहा जाता है। उनके बड़े भाई रामराय ने दिल्ली जाकर औरंगजेब से गुरुजी की शिकायत की तो औरंगजेब ने गुरुजी को दिल्ली दरबार में पेश होने का आदेश दिया। गुरुजी और उनकी माताजी, दोनों दिल्ली आए और राजा जयसिंह के बंगले पर ठहरे। यहाँ गुरुजी चेचक रोग से ग्रसित हो गए जिसके कारण उनका निधन हो गया। अपने देहांत से पहले उन्होंने एक नारियल और पाँच पैसे मंगवाए। इन वस्तुओं को पकड़कर उन्होंने तीन बार घुमाया और कहा–बाबा बकाला। इन शब्दों से उनका भावार्थ था कि उनके उत्तराधिकारी उनके दादाजी होंगे जो कि बकाला अमृतसर में रहते हैं। 30 मार्च, 1664 को उनका निधन हो गया।

9. गुरु तेगबहादुर (1664 ई.–1675 ई.) : 11 अगस्त, 1664 ई. को गुरु हरकिशन की अंतिम इच्छा के अनुसार, उनके कुछ शिष्य, नारियल और पाँच पैसे लेकर बकाला में रह रहे उनके दादाजी के पास गए, जिन्हें आज हम गुरु तेगबहादुर के नाम से जानते हैं। इन शिष्यों ने उन्हें गुरु गद्दी ग्रहण करने का आग्रह किया। गुरु तेगबहादुर ने गद्दी पर आसीन होने के बाद धर्म की रक्षा और प्रसार के लिए बहुत कार्य किए।

चित्र-4. गुरुद्वारा शीशगंज, दिल्ली

इस समय मुगल शासक औरंगज़ेब दिल्ली का शासक था। उसके आदेश के अनुसार देशभर में सभी हिन्दुओं पर अत्याचार किए जा रहे थे और मंदिरों को तोड़ा जा रहा था। गुरुजी की धर्म के प्रति निष्ठा सुनकर कश्मीरी पंडित उनसे मिलने आए। उन्होंने गुरुजी को बताया कि

©BSEH, Bhiwani Not to be republished

किस तरह पूरे कश्मीर में हिन्दुओं को मुसलमान बनने के लिए मजबूर किया जा रहा है और मंदिर तोड़कर उनके स्थान पर मस्जिदें बनाई जा रही हैं। धर्म पर आए इस खतरे को देखकर गुरुजी ने पंडितों का समर्थन करने का निश्चय कर लिया और वे पंडितों के साथ दिल्ली चले आए। 11 दिसंबर, 1675 ई. को दिल्ली के चाँदनी चौक पर भाई मतिदास, भाई सतिदास और भाई दयाला के साथ गुरु तेगबहादुर को शहीद कर दिया गया। जहां उनका सिर काटा गया था, वहां आज 'गुरुद्वारा शीशगंज साहिब' है। हिंदू धर्म की लाज रखने के कारण उनको 'हिन्द की चादर' कहा जाता है।

10. गुरु गोबिन्द सिंह (1675 ई.-1708 ई.) : 22 दिसंबर, 1666 ई. को पटना में, गुरु तेगबहादुर के घर, उनकी पत्नी माता गुजरी देवी ने एक बालक को जन्म दिया। उस बालक का नाम गोबिन्द दास रखा गया। यह गुरु तेगबहादुर के इकलौते पुत्र थे। उन्हें आज हम 'गुरु गोबिन्द सिंह' के नाम से जानते हैं। सन् 1672 ई. में गुरु तेगबहादुर सपरिवार आनंदपुर साहिब में रहने लगे जहां गुरु गोबिन्द दास की शिक्षा हुई। उन्हें संस्कृत की शिक्षा पंडित हंसराज ने और फारसी की शिक्षा काजी पीर मोहम्मद ने दी। बजर सिंह से उन्होंने घुड़सवारी और अस्त्र-शस्त्र की विद्या ली। भाई गुरबख्श सिंह ने उन्हें गुरमुखी का ज्ञान दिया।

माना जाता है कि जब कश्मीरी ब्राह्मण गुरु तेगबहादुर के पास सहायता के लिए आए थे तो गुरुजी ने कहा था कि अब किसी महान पुरुष को बलिदान देना होगा। इस पर बालक गोबिन्द दास ने उनसे कहा कि इस कार्य के लिए आपसे महान कौन हो सकता है? अपने पुत्र के मुंह से ये शब्द सुनते ही गुरुजी ने अपने बलिदान का निश्चय कर लिया था। और वह ब्राह्मणों के साथ दिल्ली चले गए। गोबिन्द दास के मामा श्री किरपाल चंद ने उनका ध्यान रखा।

सभी सिक्ख गुरु गृहस्थी थे। दशम गुरु महाराज के परिवार में उनकी दो पत्नियां व चार पुत्र थे। इनके नाम - अजीत सिंह, जुझार सिंह, जोरावर सिंह और फतेह सिंह। धर्म की रक्षा करने के लिए किरपाल चंद ने गुरुजी के लिए सेना का गठन किया। उन्होंने लोगों से कहा कि सभी अपने पुत्रों को धर्म की रक्षा के लिए सिक्ख बनाएं। लोगों ने अपने बेटों को सिक्ख बनाना शुरू कर दिया। दान के रूप में भी शस्त्रों और घोड़ों की भेंट देने को कहा गया। इससे उनके पास बड़ी संख्या में सैनिक और शस्त्र इकट्ठे हो गए। गोबिन्द राय ने बड़े होने पर यमुना नदी के किनारे एक सुंदर स्थान पर 'पाँउटा साहिब' नगर की स्थापना की। यहां 52 कवियों को ठहराया गया। यहां उन्होंने सिक्खों को मानसिक रूप से सशक्त बनाने के लिए रामायण और महाभारत का हिन्दी और गुरुमुखी में अनुवाद भी करवाया।

खालसा की स्थापना : सिक्ख धर्म में गुरु गोंबिद सिंह का योगदान अतुलनीय है। उन्होंनें सिक्ख धर्म को एक नया स्वरूप दिया और 'खालसा' की स्थापना की। खालसा की स्थापना 1699 ई. में आनन्दपुर साहिब में

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

की गई थी। 'खालसा' शब्द का अर्थ है पवित्र। खालसा की स्थापना से गुरुजी ने सिक्ख धर्म को सैन्य स्वरूप प्रदान किया, जो मुगलों से मुकाबला करने के लिए समय की मांग थी।

खालसा की स्थापना कर गुरु गोबिन्द सिंह ने सिक्ख धर्म के इतिहास में एक नया अध्याय जोड़ दिया। सन् 1699 ई. की बैशाखी के दिन, गुरुजी के आह्वान पर पांच लोग धर्म हित में अपने प्राण देने के लिए आगे आए। इन्हें 'पंज प्यारे' कहा जाता है। सबसे पहले लाहौर के दयाराम क्षत्रिय ने स्वयं को प्रस्तुत किया। फिर हस्तिनापुर (मेरठ) के धर्मदास जाट ने, द्वारका से मोहकम चंद दर्जी ने, बीदर के साहिब चंद नाई ने और जगन्नाथपुरी (उड़ीसा) से हिम्मत राय कहार ने धर्म की रक्षा के लिए तत्परता दिखाई। इन सब को गुरुजी ने सबके समक्ष 'पाँच प्यारों' के रूप में प्रस्तुत किया। पाँचों वीरों ने गुरुजी के साथ मिलकर अमृत ग्रहण किया।

ये पाँचों वीर दर्शाते हैं कि गुरुजी के अनुयायी समस्त भारत में थे। इसके बाद गुरुजी ने इन सबके नामों के साथ 'सिंह' लगा दिया और वे स्वयं भी गुरु गोबिन्द दास के स्थान पर 'गुरु गोबिन्द सिंह' के नाम से जाने जाने लगे। गुरु गोबिन्द सिंह ने 'खालसा' की स्थापना कर भविष्य में सिक्खों के लिए पांच प्रतीक धारण करना अनिवार्य कर दिया। ये प्रतीक थे : केश, कृपाण, कड़ा, कंघा और कच्छा। समय की माँग थी कि सभी वर्गों के लोग मिलकर धर्म पर आए इस संकट से लड़ने के लिए आगे आएँ। गुरुजी ने अपनी दूर-दृष्टि से एक ऐसी सेना का निर्माण किया जो मुगलों से लोहा ले सके। इस सेना में शामिल होने वालों को खालसा कहा जाता था। गुरु गोबिन्द सिंह ने घोषणा की कि जब देश पर विदेशी शक्तियाँ हमलावर होकर आई हैं, तो एक ही तीर्थ है-रणभूमि, एक ही वर्ण है-खालसा।

गुरु गोबिंद सिंह का संघर्ष

- **भंगाणी की लड़ाई :** सन् 1686 ई. में फतेह शाह ने हयात खान और नज़ाबत खान के सैनिकों के साथ मिलकर गुरुजी की सेना पर आक्रमण कर दिया। गुरुजी ने किरपाल चंद और ब्राह्मण दयाराम के सैनिकों की सहायता से फतेह शाह और उसके साथियों को हरा दिया। इस लड़ाई का उल्लेख बिचित्र नाटक में मिलता है जिसमें गुरु गोबिन्द सिंह ने ब्राह्मण दयाराम की प्रशंसा करते हुए कहा है कि वो ब्राह्मण ऐसे लड़ रहा था मानो उसे पांडवों के गुरु द्रोणाचार्य ने युद्ध की शिक्षा दी हो। उन्होंने अपने मामा किरपाल चंद की वीरता की भी बहुत प्रशंसा की है। इस विजय के बाद वे आनंदपुर साहिब आ गए, जहाँ उन्होंने केशगढ़, आनंदगढ़ और फतेहगढ़ नामक किलों का निर्माण करवाया।
- **नादौन एवं गुलेर की लड़ाई :** 1690-91 ई. में पहाड़ी राजाओं ने मुगल सरकार को कर देने से मना कर दिया। इस पर आलिफ खान के नेतृत्व में मुगल सेना ने पहाड़ी राजाओं को दण्ड देने का निर्णय किया।

©BSEH Bhiwani
Not to be republished

नादौन नामक स्थान पर मुगल सेना व पहाड़ी राजाओं के बीच युद्ध हुआ। गोविन्द राय ने राजा भीमचन्द व अन्य पहाड़ी राजाओं के साथ मिलकर मुगल सेना को हरा दिया। लेकिन बाद में पहाड़ी राजाओं ने मुगलों से संधि कर ली जिससे गुरु गोविन्द राय को निराशा हुई। दूसरी तरफ औरंगज़ेब को यह आभास हो गया था कि पंजाब में उसके विरुद्ध गोविन्दराय की शक्ति बढ़ रही है। वह अभी दक्षिण में वीर मराठों से जूझ रहा था, इसलिए उसने अपने फौज़दारों को आदेश दिया कि वह गोबिन्दराय के विरुद्ध कार्यवाही करें। सन् 1694 ई. में कांगड़ा के फौज़दार दिलावर खान और उसके बेटे खानज़ादा रुस्तम खान ने मुगल सेना के साथ रात को सतलुज नदी पार कर ली। वहाँ गुरुजी की सेना ने अभी उन पर कुछ गोले दागे ही थे कि खानज़ादा और उसके सैनिक भाग खड़े हुए। इस प्रकार ये युद्ध गुरुजी ने बिना लड़े ही जीत लिया। फौजदार ने अपने सेनापति हुसैन खान को गुलेर के राजा और गुरुजी के विरुद्ध लड़ने के लिए भेजा। पठानकोट के निकट हुए इस युद्ध में हुसैन खान मारा गया और उसकी सेना पराजित हो गई।

- **आनंदपुर साहिब का प्रथम युद्ध :** 1700 ई. में औरंगज़ेब के दस हजार सैनिक दीना बेग और पैंदा खान के साथ, युद्ध के लिए पंजाब पहुंचे। यहाँ गुरु गोबिन्द सिंह ने एक ही बाण से पैंदा खान का वध कर दिया, जिससे मुगल सेना भयभीत होकर मैदान छोड़कर भाग गई। बिलासपुर के राजा भीमचंद का कहना था कि यदि गुरुजी आनंदपुर साहिब में रहना चाहते हैं तो उसका किराया दें अन्यथा वे उसे छोड़ दें। कुछ इतिहासकारों का मानना है कि वह गुरुजी के बढ़ते प्रभाव से प्रसन्न नहीं था, इसलिए उसने ऐसा किया। गुरुजी पर दबाव डालने के लिए भीमचंद ने अपने सहयोगियों के साथ मिलकर आनंदपुर साहिब को घेर लिया। गुरुजी इनसे युद्ध नहीं चाहते थे इसलिए वे आनंदपुर छोड़कर कीरतपुर के निकट निर्मोह नामक स्थान पर चले गए।

- **निर्मोह का युद्ध :** सन् 1702 ई. में वज़ीर खान के नेतृत्व में मुगल सेना ने सिक्खों पर हमला कर दिया। दूसरी ओर से मुगलों का सहयोग करने वाले कुछ पहाड़ी राजाओं ने भी हमला किया। यह युद्ध दो दिन तक चला जिसके अंत में गुरुजी की सेना विजयी हुई और वज़ीर खान अपनी सेना सहित मैदान छोड़कर भाग गया।

- **बसोली का युद्ध :** निर्मोह के युद्ध के बाद गुरुजी अपनी सेना के साथ हिमाचल के बसोली में चले गए, जहाँ का राजा धर्मपाल उनका सहयोगी था। जब यहाँ मुगल सेना ने हमला किया तो धर्मपाल के विरोधी अजमेर चंद ने मुगल सेना का साथ दिया। यह युद्ध एक संधि में समाप्त हुआ, जिसके पश्चात् गुरुजी एक बार फिर से आनन्दपुर साहिब में आ गए।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

- **आनंदपुर का दूसरा युद्ध :** दो वर्ष की शांति के बाद सन् 1704 ई. में एक बार फिर मुगल सेना ने आनंदपुर पर हमला किया। इस बार युद्ध की कमान सैय्यद खान और रमजान खान के हाथों में थी। एक बार पुनः वे सिक्ख वीरों से परास्त होकर लौट गए। इस हार का प्रतिशोध लेने के लिए औरंगज़ेब ने फौज़दार वज़ीर खान और ज़बरदस्त खान को एक बड़ी सेना के साथ सिक्खों पर हमला करने के लिए भेजा। मुगलों ने किले को घेर लिया। उनकी रणनीति थी कि जब अंदर भोजन सामग्री समाप्त हो जाएगी, तो सिक्खों के पास पराजय के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं होगा। आठ महीने तक घेराबंदी रहने से मुगलों की रणनीति काम कर गई। न कोई अंदर से बाहर आ सकता था और न ही सिक्खों तक कोई सहायता पहुँच सकती थी। मुगलों ने आश्वासन दिया कि यदि वे किला खाली कर दें, तो उनपर हमला नहीं होगा। 21 दिसंबर, 1704 ई. को माता गुजरी के कहने पर गुरुजी ने आनंदपुर छोड़ने का निश्चय किया।

- **चमकौर साहिब का युद्ध :** गुरुजी के आनंदपुर से निकलते ही मुगलों ने उन्हें सुरक्षित निकल जाने का अपना वादा तोड़ दिया और अपनी सेना को उनके पीछे भेज दिया। सरसा नदी पार करके जब वे चमकौर साहिब पहुँचे, तो उनके साथ केवल चालीस सिक्ख बचे थे। एक ओर केवल चालीस सिक्ख योद्धा और दूसरी ओर हज़ारों मुगल। किन्तु उस दिन के युद्ध ने संसार को दिखा दिया कि आखिर भारतमाता के सपूत किस मिट्टी से बने हुए हैं। यहाँ लड़ते हुए गुरुजी के दोनों बड़े पुत्र अजीत सिंह और जुझार सिंह भी वीरगति को प्राप्त हुए। दो छोटे पुत्रों जोरावर सिंह व फतेहसिंह को सरहिंद के सूबेदार ने जीवित दीवार में चिनवा दिया था। पाँच प्यारों में से तीन साहिब सिंह, मोहकम सिंह और हिम्मत सिंह भी शहीद हो गए। पूरे दिन के संघर्ष के बाद केवल पाँच सिक्ख ही जीवित बच सके।

- **खिदराना का युद्ध :** गुरु गोबिंद सिंह चमकौर साहिब से निकलकर खिदराना की ओर चले गए। खिदराना तक पहुँचते-पहुँचते रास्ते में लगभग दो हजार और सिक्ख सैनिक गुरुजी की सेना में शामिल हो गए, लेकिन इनका सामना दस हजार मुगल सैनिकों से था। इन दो हजार सिक्खों में चालीस सिक्ख ऐसे थे जो आनंदपुर साहिब में उन्हें छोड़कर अपने घरों को चले गए थे। उनकी पत्नियों ने जब उन्हें इस कायरता के लिए लज्जित किया तो वे पुनः गुरुजी की सहायता के लिए आ गए। इस युद्ध में अन्य सिक्खों के साथ ये चालीस भी वीरगति को प्राप्त हो गए। इन्हें 'चालीस मुक्तें' भी कहा जाता है। इन्हीं की स्मृति में खिदराना का नाम आज 'मुक्तसर' अथवा 'मुक्ति की झील' है।

> **क्या आप जानते है?**
> गुरु गोबिंद सिंह ने मुगल सम्राट औरंगजेब को फारसी भाषा में 'जफरनामा' पत्र लिखकर उसके कुकृत्यों के लिए फटकार लगाई। तथा उसके अत्याचारों के विरुद्ध अपनी लड़ाई को न्यायोचित ठहराया।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

खिदराना से गुरुजी तलवंड़ी पहुंचे। तलवंड़ी में गरु गोबिन्द सिंह ने अपनी स्मृति के बल पर आदि ग्रन्थ को पुन: लिखा तथा दशम पातशाह का ग्रंथ भी संकलित किया। इसलिए तलवंड़ी को 'गुरु की काशी' कहा जाने लगा। 1707 ई. में मुगल बादशाह बहादुरशाह ने उन्हें अपने साथ दक्षिण जाने का आग्रह किया। गुरुजी तलवंडी से महाराष्ट्र के नांदेड़ में आ गए। नांदेड़ में 1708 ई. में एक पठान ने गुरु गोबिन्द सिंह की पीठ में छुर्रा घोंप दिया जिससे वे गहरे घाव के कारण 1708 ई. को गुरु गोबिन्द सिंह इस संसार को छोड़कर परम ज्योति में समा गए। गुरु गोबिन्द सिंह ने जनता में आत्मविश्वास का भाव जगाकर उन्हें अन्याय एवं अत्याचार के विरुद्ध संघर्ष का पाठ पढ़ाया।

गतिविधि : उपर्युक्त विस्तृत अध्ययन के आधार पर सिक्ख पंथ के दस गुरुओं के नाम और कालक्रम की एक सूची तैयार करें।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

बंदा सिंह बहादुर का संघर्ष : देहान्त से कुछ समय पूर्व गुरु गोबिन्द सिंह की भेंट एक ऐसे महान वीर से हुई, जिसने न केवल मुगलों से संघर्ष को जीवित रखा, बल्कि गुरुजी के बेटों की अमानवीय हत्या का प्रतिशोध भी लिया। इस महानायक को विभिन्न नामों से जाना जाता है: माधोदास बैरागी, वीर बंदा बैरागी और बंदा सिंह बहादुर।

सन् 1670 ई. में जम्मू-कश्मीर स्थित राजौरी नामक स्थान में जिस बालक का जन्म हुआ था उसके माता-पिता ने उसका नाम लक्ष्मण देव रखा था। उनका परिवार कृषि करता था इसलिए लक्ष्मण देव भी कृषि में पिता का हाथ बटाने लगे। एक दिन हिरणी के शिकार ने उनकी जीवनधारा ही बदल दी। हिरणी को तड़पते हुए देखकर लक्ष्मण देव में वैराग्य का भाव उत्पन्न हो गया और वो बैरागी सम्प्रदाय से जुड़ गए। वैराग्य की दीक्षा लेने के बाद उनका नाम माधोदास बैरागी हो गया। उन्होंने विभिन्न अखाड़ों में अस्त्र-शस्त्रों में निपुणता अर्जित की थी।

1708 ई. को उनकी भेंट नांदेड़ में गुरु गोबिन्द सिंह से हुई। गुरु गोबिन्द सिंह ने माधोदास बैरागी को अमृतपान करवाया, और फिर वे 'बंदा सिंह बहादुर' के नाम से जाने जाने लगे। गुरुजी ने मुगलों द्वारा सभी गैर-मुसलमानों पर हो रहे अत्याचार रोकने के लिए बंदा सिंह बहादुर को सिक्खों का सेनापति नियुक्त कर दिया। गुरु गोबिन्द सिंह ने बंदा सिंह बहादुर को पांच तीर देकर तथा 25 सिक्खों के साथ पंजाब की तरफ रवाना किया। बंदा सिंह बहादुर के जीवन का असली सफर यहीं से शुरू हुआ। उन्होंने औरंगजेब की मृत्यु से उत्पन्न

चित्र-5. सेहरी खाण्डा में स्थापित बंदा बहादुर की प्रतिमा

अराजकता की स्थिति का लाभ उठाया तथा 1709 ई. में हरियाणा में सोनीपत के निकट सेहरी खाण्डा नामक स्थान पर डेरा लगाया। शीघ्र ही बंदा सिंह बहादुर ने सिक्खों की बिखरी हुई शक्ति को एकजुट किया। बंदा सिंह बहादुर के साथ बहुत से लोग जुड़ चुके थे। ये वो लोग थे जो मुगलों द्वारा सताये गए थे। इन्हें बंदा सिंह बहादुर के रूप में एक योग्य नेता मिला। बंदा सिंह बहादुर ने एक विशाल सेना संगठित की तथा मुगलों के विरुद्ध संघर्ष शुरू कर दिया। इस सेना में हर वर्ग के लोग सम्मिलित थे जिन्हें बलपूर्वक मुसलमान बना दिया गया था। उन मुसलमानों को भी उन्होंने अपनी सेना में सम्मिलित कर लिया। इस सेना में ऐसे कारीगर भी थे जो अपने शस्त्र स्वयं ही बनाते थे।

आरम्भ में बंदा सिंह बहादुर ने अनेक छोटी-छोटी लड़ाइयां लड़ी तथा जीत हासिल की। उनकी पहली बड़ी लड़ाई 1709 ई. में समाना शहर की मानी जाती है। इस लड़ाई को जीतकर उन्होंने भाई फतेहसिंह को यहाँ का सूबेदार नियुक्त किया। तत्पश्चात् उन्होंने घुड़ाम, ठसका, मुस्तफाबाद को भी आसानी से जीत लिया। इसके बाद उन्होंने सढौरा की तरफ रुख किया किन्तु रास्ते में सढौरा से चार मील दूर स्थित कपूरी गांव के दुराचारी जमींदार कदमुद्दिन पर हमला करके वहां की जनता को राहत दी। उसके बाद बंदा सिंह बहादुर ने सढौरा के अत्याचारी फौज़दार उसमान खान पर आक्रमण किया। सढौरा की लड़ाई में वहां की आम जनता किसान, मजदूर आदि सबने मिलकर बंदा का साथ दिया। थोड़े से संघर्ष के बाद सढौरा पर सिक्खों का नियंत्रण हो गया।

बंदा सिंह बहादुर एक कुशल योद्धा थे। उन्होंने सरहिंद पर आक्रमण करने से पहले उसकी चारों तरफ की सहायक शक्तियों को नष्ट कर दिया था। तत्पश्चात् बंदा सिंह बहादुर ने 1710 ई. में सरहिंद पर चढ़ाई की। सरहिंद के मुगल सूबेदार वजीर खान की सेना तथा बंदा सिंह बहादुर की सिक्ख सेना के मध्य चपड़-चिड़ी नामक स्थान पर भयानक युद्ध हुआ। युद्ध में बंदा सिंह बहादुर की विजय हुई तथा सिक्खों ने सरहिंद पर अधिकार कर लिया। यद्यपि सरहिंद मुगल सल्तनत का एक महत्वपूर्ण शहर था। लेकिन फिर भी बंदा सिंह बहादुर ने उसे अपनी राजधानी नहीं बनाया। राजनीतिक सुरक्षा की दृष्टि से उनका यह फैसला सही भी था। क्योंकि सरहिंद मुख्य मार्ग पर स्थित था और उन्हें पता था कि मुगल सेना यहां हमला अवश्य करेगी। इसलिए बंदा सिंह बहादुर ने सढौरा के निकट शिवालिक की पहाड़ियों में स्थित मुखलिसगढ़ के किले को सिक्खों की प्रथम राजधानी बनाया तथा इस किले का नाम बदलकर लौहगढ़ रखा गया। यहीं से प्रथम सिक्ख राज्य का संचालन कार्य शुरू हुआ।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

बंदा सिंह बहादुर ने प्रशासन को सुचारू रूप से चलाने के लिए बाज सिंह को सरहिंद, फतेह सिंह को समाना तथा विनोद सिंह व राम सिंह को थानेसर का सूबेदार बनाया। उन्होंने गुरु नानक व गुरु गोबिंद सिंह के नाम से सिक्के चलाए तथा सरहिंद की विजय के बाद एक नया संवत् भी आरम्भ किया। उन्होंने हुकुमनामे व फरमान जारी करने के लिए एक सील (मोहर) भी जारी की। बंदा सिंह बहादुर ने प्रशासनिक कार्यों के साथ-साथ ज़मीदारी प्रथा को समाप्त कर किसानों को भूमि का स्वामित्व दिया।

अगले छह वर्षों में बंदा सिंह बहादुर की इस सेना ने सहारनपुर से लेकर लाहौर तक के क्षेत्र पर अधिकार कर लिया। दिसम्बर 1715 ई. को मुगल सेना ने उन्हें आठ सौ साथियों सहित गुरदास नंगल नामक स्थान से बन्दी बना लिया। इनमें बंदा सिंह बहादुर का चार वर्षीय बेटा अजय सिंह और उनकी पत्नी भी थे। 9 जून, 1716 ई. को दिल्ली में उन्हें अमानवीय यातनाएँ देकर शहीद कर दिया गया।

इस प्रकार सिक्खों के दस गुरुओं एवं बंदासिंह बहादुर ने अपनी वीरता, साहस एवं संघर्ष से पंजाब के सिक्खों को विजय तथा स्वतंत्रता का पाठ पढ़ाया। किसानों व अन्य निम्न वर्गों में आत्म सम्मान की भावना उत्पन्न करके उन्हें स्वयं परिस्थितियों से लड़ना सिखाया। उन्होंने भक्ति के साथ शक्ति, माला के साथ भाला, वाणी के साथ बाणा देकर सिक्ख धर्म को नया स्वरूप दिया। उनके कार्यों और बलिदानों से ही भविष्य में पंजाब में रणजीत सिंह के नेतृत्व में शक्तिशाली सिक्ख राज्य की स्थापना हुई।

गतिविधि : अपने आस-पास सिक्खों से सम्बन्धित ऐतिहासिक स्थलों अथवा गुरुद्वारा का भ्रमण करें और लंगर प्रथा को जानें।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

आओ याद करें :

1. गुरु नानक देव का जन्म 1469 ई. में तलवंडी नामक गांव (वर्तमान पाकिस्तान) में हुआ।
2. गुरु अर्जुन देव ने 1590 ई. में रावी और व्यास नदियों के मध्य तरनतारन नगर बसाया।
3. 11 दिसंबर, 1675 ई. को दिल्ली के चांदनी चौक में गुरु तेगबहादुर एवं उनके सहयोगी मतिदास, सतिदास एवं भाई दयाला को अमानवीय शारीरिक यातनाएं देकर मौत के घाट उतारा गया।
4. गुरु गोबिंद सिंह ने 1699 ई. में आनंदपुर साहिब में खालसा की स्थापना की।
5. गुरु गोबिन्द सिंह के पंज प्यारों में दयाराम क्षत्रिय (लाहौर), धर्मदास जाट (मेरठ), मोहकमचंद दर्जी (द्वारिका), साहिबचंद नाई (बीदर) एवं हिम्मत राय कहार (उड़ीसा) थे।
6. गुरु गोबिन्द सिंह ने आनंदपुर साहिब के प्रथम युद्ध में मुगल सेनापति पैंदा खान का वध कर दिया था।
7. गुरु गोबिन्द सिंह और बंदा बहादुर की भेंट 1708 ई. में नांदेड़ (महाराष्ट्र) नामक स्थान पर हुई।
8. बाबा बंदा सिंह बहादुर ने 1708 ई. में हरियाणा के सोनीपत में सेहरी खांडा को अपना प्रमुख केन्द्र बनाया।

रिक्त स्थान भरें :

1. लंगर व्यवस्था की स्थापना.............................ने की थी।
2. मंजी-प्रथा की स्थापना गुरु .... ने की थी।
3. बाल गुरु .... को कहा जाता है।
4. गुरु हरगोविंद को.................. किले में कैद किया गया था।
5. खालसा की स्थापना .... ने की थी।

निम्नलिखित का सही मिलान करें :

1.	गुरु नानक	मीरी और पीरी
2.	गुरु अंगददेव	गोविंदवाल
3.	गुरु रामदास	गुरुग्रंथ साहिब
4.	गुरु अर्जुनदेव	ननकाना साहिब
5.	गुरु हरगोविंद	अमृतसर नगर

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

आओ विचार करें:

1. गुरु तेगबहादुर के हिन्दू धर्म की रक्षा में योगदान एवं बलिदान पर विचार कीजिए।
2. गुरु गोविंद सिंह की मुगलों के विरुद्ध लड़ाइयों एवं उनके परिणाम पर विचार कीजिए।
3. धर्म की रक्षा एवं साम्राज्य की स्थापना में वीर बंदा सिंह बहादुर के योगदान पर विचार करें।

आओ चर्चा करें :

1. सिक्ख पंथ की उत्पत्ति एवं विकास का वर्णन कीजिए।
2. गुरु नानक देव के जीवन और शिक्षाओं पर चर्चा कीजिए ।
3. सिक्ख को सैन्य स्वरूप देने वाले गुरु गोबिंद सिंह के सिक्खों के विकास में योगदान पर चर्चा कीजिए।
4. खालसा की स्थापना एवं विस्तार पर गुरु गोबिंद सिंह के कार्यों पर विस्तृत चर्चा करें।
5. आनन्दपुर साहिब के युद्धों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

अध्याय

3

राष्ट्रीय भक्ति आंदोलन

रमन ने आज सुबह अपने दादाजी को टेलीविजन पर एक संत के प्रवचन सुनते हुए देखा। अपनी कक्षा में आकर उसने शिक्षक से पूछा :

1. संत कौन होते हैं?
2. वे प्रवचन क्यों करते हैं?
3. लोग उन्हें क्यों सुनते हैं?

रमन के प्रश्न सुनकर शिक्षक ने विद्यार्थियों से कहा कि आज हम मध्यकाल के भारतीय सन्तों के जीवन एवं शिक्षाओं के बारे में विस्तृत अध्ययन करेंगे। इस अध्ययन से हमें रमन द्वारा पूछे गए प्रश्नों का उत्तर प्राप्त हो जाएगा।

आओ जानें

- भक्ति आंदोलन क्या था?
- संत कौन थे?
- उनकी प्रमुख शिक्षाएं क्या थी?
- इनका समाज पर क्या प्रभाव पड़ा?
- मध्यकाल में प्रमुख संत कौन-कौन थे?

भक्ति : ईश्वर के प्रति अनुराग व समर्पण। जन्म-मरण के बंधन से मुक्ति प्राप्त करने का एक माध्यम जो मध्यकाल में बड़ा लोकप्रिय हुआ।

संत या गुरु : जन्म-मरण के बंधन से मुक्ति का मार्ग बताने वाले महापुरुष।

भक्ति मार्ग : अध्यात्म में जन्म-मरण के क्रम को एक प्रक्रिया माना जाता है। इस प्रक्रिया से मुक्ति पाने के लिए तीन मार्ग बताए गए हैं; ज्ञान मार्ग, कर्म मार्ग व भक्ति मार्ग। अर्थात् भक्ति मार्ग एक प्रक्रिया है जिस पर चलकर साधक या भक्त जन्म-मरण की प्रक्रिया से छुटकारा पा सकता है।

मध्यकाल में समाज में व्याप्त दुर्बलताओं को दूर करने के लिए भक्ति आंदोलन चला। यह आंदोलन राष्ट्रव्यापी था। वैसे तो यह आंदोलन कई शताब्दियों तक चला लेकिन 9वीं से 16वीं शताब्दी तक भारत के विभिन्न भागों में इसका व्यापक प्रभाव देखा गया। 14वीं से 16वीं शताब्दी तक तो यह आंदोलन अपने चरम पर था। इस आंदोलन का सूत्रपात दक्षिण भारत में हुआ। वहाँ से यह संपूर्ण भारत में फैल गया। वास्तव में भारत में जीवन के साथ अध्यात्म गहरे रूप से जुड़ा है। यहाँ की प्राचीन परम्पराओं व समाज में मुक्ति के तीन मार्ग बताएं हैं ये हैं ज्ञान मार्ग, कर्म मार्ग व भक्ति मार्ग। मध्यकाल में भक्ति मार्ग को विशेष महत्व मिला। इस समय धर्म के वास्तविक सिद्धांतों का स्थान झूठे रीति-रिवाजों व अंधविश्वासों ने ले लिया था। धर्म में प्राचीन मौलिकता व शुद्धता नहीं रह गई थी। समाज में भी छुआछूत व जाति प्रथा जैसी बुराइयों ने अपनी जड़ें जमा ली थी। प्राचीन सामाजिक ताना-बाना छिन्न-भिन्न हो रहा था। ऐसे समय में भारत के विभिन्न भागों में अनेक संतों ने समाज में व्याप्त बुराइयों को दूर करने के लिए भक्ति मार्ग का प्रचार-प्रसार किया।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

इन महापुरुषों में रामानुजाचार्य, नामदेव, जयदेव, चैतन्य महाप्रभु, रामानंद, संत कबीर, मीराबाई व गुरु नानक देव जैसे महापुरुष थे। शंकराचार्य ने अद्वैतवाद का प्रचार किया था। अद्वैतवाद में आत्मा व परमात्मा को एक ही माना गया है। संसार को माया बताया गया है व ईश्वर सर्वव्यापक बताया गया है। भक्ति आंदोलन से जुड़े संतों के मुख्य सिद्धांतों के मूल में आदि गुरु शंकराचार्य की विचारधारा ही थी।

शंकराचार्य : भारत के एक महान् दार्शनिक थे जिन्होंने अद्वैत मत का प्रचार किया। उन्होंने उपनिषदों और वेदान्त सूत्रों पर अनेक टीकाएँ लिखीं। उन्होंने भारत में चार मठों की स्थापना की जो बड़े प्रसिद्ध हैं।

1. ज्योतिर्मठ (बद्रीनाथ)
2. शृंगेरी मठ (रामेश्वरम्)
3. शारदा मठ (द्वारिका धाम)
4. गोवर्धन मठ (पुरी)

चित्र-1. आदि शंकराचार्य

प्रमुख भक्ति संत या गुरु

चित्र-2. रामानुजाचार्य

1. रामानुजाचार्य : भक्ति आंदोलन के संतों में रामानुजाचार्य का नाम प्रमुख है। इनका जन्म चेन्नई के निकट श्रीपेरुम्बुदूर नामक स्थान पर 1017 ई. में हुआ था। उनके पिता का नाम केशव तथा माता का नाम कान्तिमती था। वे विष्णु के उपासक थे। अपना सारा जीवन उन्होंने वैष्णव मत के प्रचार में लगा दिया। उनके उपदेशों से प्रभावित होकर जनसाधारण से लेकर शासकों तक ने वैष्णव मत स्वीकार कर लिया। उन्होंने इस बात का प्रचार किया कि निम्न जातियाँ भी मोक्ष प्राप्त कर सकती हैं। उन्होंने भगवद् गीता पर भाष्य लिखा। उनका कार्यक्षेत्र दक्षिण भारत रहा था।

चित्र-3. रामानंद

2. रामानंद : उत्तरी भारत में भक्ति आंदोलन के महान प्रचारक रामानंद थे। उनका जन्म प्रयागराज में हुआ था। वे जाति प्रथा के कटु आलोचक थे। उनके अनुयायी प्रायः सभी जातियों के लोग होते थे। उनके अनुयायियों को 'अवधूत' कहा जाता था जिसका अर्थ होता था 'बंधनों से मुक्त'। वे सच्चे अर्थों में महान सुधारक थे। उन्होंने स्त्रियों को पुरुषों के बराबर का दर्जा दिया। उन्हें दक्षिणी तथा उत्तरी भारत में चलने वाले भक्ति आंदोलन के बीच की कड़ी कहा जाता है।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

3. नामदेव : महाराष्ट्र में भक्ति आंदोलन के प्रमुख संत नामदेव थे। उनका जन्म 1270 ई. में हुआ था। वह व्यवसाय से दर्जी थे। इन्होंने ईश्वर को सर्वशक्तिमान, निराकार व सर्वव्यापक माना। वह ईश्वर को एक मानते थे तथा तीर्थ यात्रा, बलि-प्रथा, मूर्ति पूजा व व्रत-संस्कार को बुराई मानते थे। उन्होंने अपने प्रचार में इनका खंडन किया। अपने सिद्धांतों का प्रचार करने के लिए इन्होंने देश के विभिन्न भागों का भ्रमण किया। इन्होंने मराठी, हिंदी व पंजाबी में अपने उपदेश भजनों के माध्यम से दिए। लंबे समय तक ये पंजाब में भी रहे। उनका मानना था कि मुक्ति का एक मात्र साधन ईश्वर भक्ति है।

चित्र-4. नामदेव

4. जयदेव तथा चैतन्य महाप्रभु : बंगाल में भक्ति आंदोलन का प्रचार करने वाले प्रमुख संत जयदेव व चैतन्य महाप्रभु थे। जयदेव कृष्ण व राधा के परम भक्त थे। उन्होंने 'गीत गोविंद' नामक पुस्तक की रचना की। अपनी इस रचना में उन्होंने राधा व कृष्ण के माध्यम से प्रेम व भक्ति का प्रचार किया। उन्हें बंगाल के शासक लक्ष्मण सेन ने अपने दरबार में 'रत्न' के रूप में जगह दी। चैतन्य महाप्रभु बंगाल की भक्ति परंपरा के एक अनन्य महान संत थे जिनका बचपन का नाम विश्वम्भर था। इनका जन्म 1485 ई. में नादिया नामक स्थान पर हुआ। वे कृष्ण के अनन्य भक्त थे। उन्होंने कीर्तन प्रथा का प्रतिपादन किया। उनके कीर्तनों में गायन के साथ-साथ संगीत व नृत्य का भी समावेश होता था।

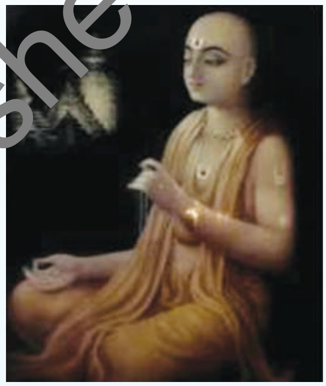
चित्र-5. चैतन्य महाप्रभु

5. कबीर : भक्तिकाल के संतों में समकालीन धार्मिक व सामाजिक बुराइयों पर गहरी चोट करने वाले व सरल व शुद्ध भक्ति के महान प्रचारक संत कबीर थे। कहा जाता है कि नीरु और नीमा नामक जुलाहा दम्पत्ति ने उनका पालन-पोषण किया था। कबीरपंथी परंपरा के अनुसार उनका जन्म 1455 ई. में माघ शुक्ल पूर्णिमा को उत्तर प्रदेश की काशी नामक नगरी में हुआ था। वह बचपन से ही धार्मिक विचारों के व्यक्ति थे वह रामानंद के शिष्य थे। उन्होंने उत्तरी भारत

चित्र-6. कबीर

क्या आप जानते हैं :

कबीर को हिंदुओं तथा मुसलमानों दोनों का स्नेह प्राप्त था। दोनों समुदाय उन्हें अपना ही मानते थे। कहा जाता है कि उनकी मृत्यु के बाद एक समुदाय उनके शव को जलाना चाहता था तथा दूसरा दफनाना चाहता था।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

में जनसाधारण की भाषा में अपने प्रवचन दिए। उनकी रचनाओं को 'बीजक' नामक ग्रंथ में संकलित किया गया है। उन्होंने 'एकेश्वरवाद' पर बल दिया है। उनके अनुसार ईश्वर सर्वव्यापक व निर्गुण है। उन्होंने जाति प्रथा छुआछूत व धार्मिक आडंबरों के विरुद्ध आवाज उठाई। उनकी भक्ति सरलता व शुद्धता पर बल देती है। कबीर जी भक्ति में सच्चे गुरु के महत्व पर बल देते हैं। उनके अनुसार सच्चा गुरु ही आत्मा का परमात्मा से मिलन का रास्ता दिखा सकता है। वह आडंबरों के कटु आलोचक थे। उन्होंने तिलक लगाना, व्रत रखना, तीर्थ यात्रा करना आदि धार्मिक आडंबरों की जमकर निंदा की। इतना ही नहीं उन्होंने मूर्ति पूजा का भी विरोध किया। उन्होंने न केवल हिंदू धर्म के बाह्य आडंबरों का विरोध किया बल्कि मुस्लिम मत में भी व्याप्त धार्मिक आडंबरों की आलोचना की। सच्चे अर्थों में कबीर एक ईश्वरवादी थे। उनका परमात्मा राम, रहीम, अल्लाह इन सभी नामों से ऊपर था, जो सर्वशक्तिमान व निराकार था।

6. गुरु नानक देव : पंजाब में 1469 ई. में जन्मे गुरुनानक देव बचपन से ही चिन्तनशील थे। सांसारिक कार्यों में वे कम ही रुचि लेते थे। बड़ा होने पर वे अध्यात्म के मार्ग पर चल पड़े। कहा जाता है कि 35 वर्ष की आयु से ही वे अपने अनुभवों का प्रचार करते हुए स्थान-स्थान पर घूमने लगे। वे ईश्वर के निर्गुण रूप में विश्वास रखते थे। उनका ईश्वर 'रब' निराकार था जो संसार का पालक तथा सृजनहार है। वे जाति प्रथा में विश्वास नहीं रखते थे। वे कहा करते थे कि जिस प्रकार तन का मैल पानी से दूर हो जाता है उसी प्रकार मन का मैल भी प्रभु भक्ति से चला जाता है। वे प्रभु नाम सिमरन पर बल देते थे। वे सादा तथा पवित्र जीवन जीने के लिए उपदेश देते थे कबीर की तरह उन्होंने भी गुरु के महत्व पर बल दिया। 'जपुजी' व 'आसा-दी-वार' नामक रचनाओं में उनकी प्रमुख शिक्षाएं मिलती है।

निर्गुण : निर्गुण भक्ति धारा के संत ईश्वर को निराकार मानते थे।

सगुण : सगुण भक्ति धारा के संत ईश्वर को साकार मानते थे तथा मूर्ति पूजा में विश्वास रखते थे।

दक्षिण भारत में भक्ति : भक्ति आंदोलन का आरम्भ दक्षिण भारत में हुआ था। वहां ऐसे अनेक संत थे जो धार्मिक आडम्बरों से दूर भगवान शिव व विष्णु को अपना आराध्य मानते थे।

नयनार : दक्षिण भारत के शैव संत व अनुयायी जो शिव के पुजारी थे। इनकी संख्या 63 थी। संत अप्पार, संत सबन्दर व सुन्दर मूर्ति इनमें प्रमुख थे। ये शिव की भक्ति का प्रचार घूम-घूम कर करते थे। कालांतर में यह सम्प्रदाय अनेक भागों में विभक्त हो गया। कपालिक, वीरशैव, इनमें प्रमुख थे।

अलवार : ये दक्षिण भारत के वैष्णव संत थे। इनकी संख्या 12 थी। तिरुमंगाई, पैरिया अलवार और नाम्मालवार प्रसिद्ध आलवार संत थे। ये विष्णु भक्ति का प्रचार घूम-घूम कर करते थे। कालान्तर में उत्तर भारत में यह सम्प्रदाय भिन्न रूप से प्रसिद्ध हुआ। उत्तर भारत में विष्णु के दो रूपों का विभिन्न संतों ने प्रचार किया। कुछ ने रामभक्ति तथा कुछ संतों ने कृष्ण भक्ति का प्रचार किया।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

7. मीराबाई : भक्ति आंदोलन की मध्यकालीन संत परम्परा में महिला संत मीराबाई भी महत्वपूर्ण स्थान रखती है। वह गुरु रविदास की शिष्या तथा कृष्ण की अनन्य भक्त थी। उनका जन्म 1498 ई. में हुआ। उनका विवाह राणा सांगा के पुत्र भोजराज से हुआ लेकिन विवाह के कुछ समय के बाद ही वे विधवा हो गई। इसके बाद उन्होंने अपना सारा जीवन ईश्वर की भक्ति में बिता दिया। मीरा 'एकतारा' नामक वाद्ययंत्र की सहायता से गीत गाकर प्रेम का संदेश देती थी। उनके गीत राजस्थानी भाषा में गाये गये थे। जिनमें आत्मा की परमात्मा से मिलन की यात्रा को दर्शाया गया है। 1547 ई. में उनका देहांत हो गया। भक्तिकाल के संतों में वे एकमात्र महिला संत थी, जिन्होंने सामाजिक बंधनों को भक्ति के लिए तोड़ दिया था।

चित्र-7. मीराबाई

8. वल्लभाचार्य : उत्तर भारत के भक्ति संतों में वल्लभाचार्य का नाम भी प्रमुख है। वे रामानंद के शिष्य थे। इनका जन्म 1479 ई. में काशी के निकट एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इनकी भक्ति का मूल वैराग्य था। ये संसार को माया मानते थे तथा ईश्वर प्राप्ति के लिए सांसारिक सुखों का त्याग अति आवश्यक मानते थे। वह कृष्ण-भक्त थे। उन्होंने अपने अनुयायियों को प्रत्येक वस्तु कृष्ण को समर्पित करने का उपदेश दिया।

चित्र-8. वल्लभाचार्य

9. धन्ना भगत : राजस्थान के टोंक जिले के धौन कलां नामक गाँव में जन्मे धन्ना भगत एक किसान परिवार से सम्बन्ध रखते थे। उनका जन्म 1415 ई. में हुआ था। उनका परिवार अतिथि सत्कार के लिए बड़ा प्रसिद्ध था। उनके घर आये किसी भी साधु-संत या व्यक्ति को भूखे पेट जाने नहीं दिया जाता था। उनके पिता का नाम रामेश्वर व माता का नाम गंगाबाई था। वह वैष्णव परम्परा के संत थे। धन्ना भगत के संबंध में कई कथाएं प्रचलित हैं। धन्ना भगत के कुछ दोहे गुरु ग्रंथ साहिब में भी संकलित हैं। उन्हें लोगों का बड़ा आदर प्राप्त था। 1475 ई. में उनके मृत्यु हो गई।

चित्र-9. धन्ना भगत

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

चित्र-10. गुरु रविदास

10. गुरु रविदास : गुरु रविदास भी भक्ति आंदोलन के महान संत थे। उन्हें रामानंद का शिष्य माना जाता है। उनका जन्म 1450 ई. में वाराणसी में हुआ था। उनके पिता का नाम रघुराम था। उन्होंने उत्तर भारत के विस्तृत क्षेत्र में भक्ति का प्रचार किया। उनके अनेक पद सिक्ख धर्म की पवित्र पुस्तक 'गुरु ग्रंथ साहिब' में संकलित किए गए हैं। उन्होंने सदा जाति प्रथा, ऊँच-नीच व धार्मिक आडंबरों का विरोध किया। वे सादगीपूर्ण ईश्वर भक्ति में विश्वास रखते थे।

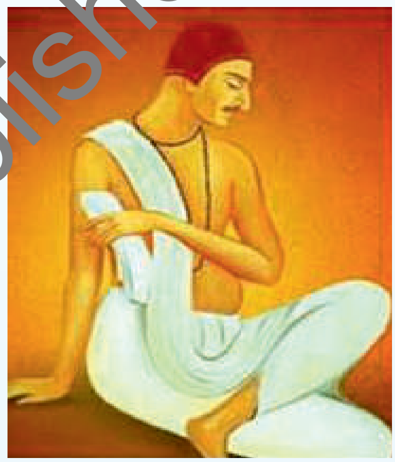
चित्र-11. सूरदास

11. रसखान : रसखान का वास्तविक नाम सैय्यद इब्राहिम था। वह दिल्ली के आस-पास के रहने वाले थे। वे 16वीं-17वीं शताब्दी के भक्त-सन्त थे। वह कृष्ण भक्ति से मुग्ध होकर विट्ठलनाथ से दीक्षा लेकर ब्रजभूमि में जा बसे। 'सुजान रसखान' और 'प्रेम वाटिका' उनकी प्रमुख कृतियां हैं। उनकी रचनाओं में कृष्ण के प्रति भक्ति-भाव, ब्रज महिमा, राधा-कृष्ण की प्रेम लीलाओं का मनोहर वर्णन मिलता है।

इन भक्त संतों के अतिरिक्त सूरदास, झूलेलाल, पीपाजी, दादूदयाल, ज्ञानेश्वर, रामदास, पूनतानं, नरसिंह मेहता, शंकरदेव आदि ने राष्ट्रीय भक्ति आन्दोलन की अलख जगाई। कुछ प्रसिद्ध मुस्लिम संतों जैसे अमीर खुसरो, मलिक मोहम्मद जायसी, रहीम आदि ने भी भारतीय जीवन में समरस होकर भक्ति आन्दोलन में अपनी भूमिका अदा की।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

क्या आप जानते हैं?

केरल के पूनतानं, गुजरात के नरसिंह मेहता तथा असम के शंकरदेव आदि संतों ने अपने भजनों, पदों तथा वाणी में भारतभूमि का वर्णन किया है।

प्रमुख शिक्षाएँ

- भक्ति—मुक्ति पाने का एक सरल व सुगम मार्ग भक्ति था। भक्ति आंदोलन के विभिन्न संतों ने समाज में आई बुराइयों का विरोध किया। मध्यकाल में भक्ति के मुख्यत: दो रूप प्रचलित थे। इन्हें सगुण व निर्गुण मार्ग कहा जाता है। सगुण भक्ति के साकार ईश्वरीय रूप को प्रमुख माना गया है। जबकि निर्गुण भक्ति धारा में ईश्वर की कल्पना निराकार रूप में की गई है। चैतन्य महाप्रभु, रामानंद, मीराबाई इत्यादि संतों का ईश्वर

सगुण था। जबकि गुरु नानक देव एवम् संत कबीर का ईश्वर निराकार व सर्वव्यापी था। भक्ति आंदोलन के सभी संत ईश्वर की एकता में विश्वास रखते थे। भक्त संतों की प्रमुख शिक्षाएं निम्नलिखित थी :

- **सर्व-व्यापक ईश्वर :** भक्त संतों का ईश्वर सर्व-शक्तिमान व सर्व व्यापक था। वह सृष्टि के कण-कण में निवास करता था। गुरु नानक देव के अनुसार उसे मंदिरों, मस्जिदों में ढूँढने की बजाय, अपने मन में तलाशना चाहिए। भक्ति आंदोलन में अपने आराध्य के प्रति आत्मसमर्पण पर बल दिया गया है। संतों के अनुसार मनुष्य को अपना सब कुछ अपने इष्ट को अर्पित कर देना चाहिए।
- **प्रभु भक्ति :** भक्त संतों ने प्रभु की भक्ति पर बल दिया। उनका मानना था कि सच्चे मन से प्रभु भक्ति करने पर ईश्वर प्रसन्न होता है। चैतन्य महाप्रभु के अनुसार कृष्ण भक्ति ही मनुष्य को मुक्ति दिला सकती है। गुरु नानक देव ने भी ईश्वर का नाम जपने पर बल दिया है।
- **गुरु को महत्व :** सभी भक्त संतों ने मुक्ति पाने के लिए गुरु के महत्व पर बल दिया है। भक्ति में गुरु का स्थान सबसे ऊँचा व पवित्र होता है। गुरु ही शिष्य को मुक्ति का सही मार्ग दिखाता है। कबीर ने गुरु को साक्षात् ब्रह्म का ही रूप माना है। गुरु नानक देव ने भी गुरु के महत्व पर बल दिया है, जो मुक्ति के मार्ग पर अग्रसर होने की प्रेरणा देता है।
- **भेदभाव का विरोध :** मध्यकालीन भक्ति आंदोलन के संत सच्चे समाज सुधारक भी थे। उन्होंने समाज में फैली कुरीतियों की कटु आलोचना की। सभी संतों ने जाति प्रथा का विरोध किया। मुक्ति का अवसर बिना सामाजिक भेदभाव के सभी को प्रदान करने पर बल दिया। कबीर के अनुसार, ''जाति-पाति पूछे नहिं कोए। हरि को भजे सो हरि का होय।।''
- **आडंबरों का विरोध :** भक्तिकाल के कई संतों ने मूर्ति-पूजा का विरोध किया। इनमें संत कबीर, नामदेव व गुरु नानक देव प्रमुख थे। वे मूर्ति-पूजा को आडंबर मानते थे। इसके अतिरिक्त उन्होंने तंत्र-मंत्र, जादू-टोनों व उपवास रखने व बलि देने का भी विरोध किया।
- **सरल जीवन :** उन्होंने सच्चे मन से मात्र प्रभु भक्ति पर बल दिया तथा सादा जीवन व्यतीत करने पर बल दिया। गुरु नानक देव संसार का त्याग करने के विरोधी थे।
- **श्रम को महत्व :** संत कबीर व रविदास ने सादगीपूर्ण भक्ति का प्रचार करते हुए भी अपने-अपने व्यवसाय को नहीं छोड़ा तथा श्रम के महत्व का संदेश दिया। कबीर ने जीवनभर कपड़ा बुना तथा रविदास ने जीवनभर अपना पुश्तैनी कार्य किया। करतार में रहते हुए गुरु नानक देव भी कृषि कार्य करते थे।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

- **समानता :** संतों ने समानता पर बल दिया। संत हिंदू-मुस्लिम एकता के तो समर्थक थे ही, साथ ही वे सामाजिक समानता पर भी बल देते थे।
- **स्थानीय भाषा :** भक्ति आंदोलन के सभी संतों ने जनसाधारण की भाषा में अपने विचारों का प्रचार किया। उनके प्रचार का माध्यम मराठी, ब्रज भाषा, बांग्ला व पंजाबी आदि स्थानीय भाषाएँ व बोलियाँ थीं। उनका दृढ़ विश्वास था कि परमात्मा की भक्ति किसी विशेष भाषा में नहीं की जा सकती। उसके लिए मन में सच्ची श्रद्धा व भावना होनी चाहिए।

सच्चे अर्थों में यह आंदोलन विविधता में एकता का प्रतीक था। इसका स्वरूप राष्ट्रीय था। भारत के विभिन्न भागों में इस आंदोलन को शुरू करने वाले संत भिन्न-भिन्न थे। लेकिन उनके मूल विचारों में समानताएं थी।

प्रभाव

भक्ति आंदोलन बहुआयामी था। समाज के प्रत्येक वर्ग पर इसका प्रभाव पड़ा। इसीलिए इसे सामाजिक सुधार आंदोलन भी कहा जाता है। संत कबीर ने हिन्दू व मुस्लिम दोनों धर्मों में व्याप्त आडम्बरों की आलोचना की थी। भारत में आध्यात्मिक इस्लाम की प्रमुख धारा सूफी आन्दोलन पर भक्ति आंदोलन व प्राचीन भारतीय आध्यात्मिक परम्पराओं का प्रभाव देखने को मिलता है। सूफी आंदोलन की चिश्ती परम्परा में दीक्षा के समय 'सिर का मुंडन' प्राचीन भारतीय ज्ञान परम्परा से ही प्रभावित माना जाता है। इसी प्रकार मध्यकालीन भारतीय सूफी आंदोलन की ऋषि परम्परा भी मूलत: प्राचीन भारतीय आध्यात्मिक परम्पराओं का ही प्रतिनिधित्व करती थी। ऋषि परम्परा मूल रूप से कश्मीर घाटी क्षेत्र में प्रचलित थी। चिश्ती व ऋषि परम्पराओं के अनुयायी योग पद्धति से प्रभावित थे।

> **सूफी आंदोलन :** यह इस्लाम की आध्यात्मिक धारा है जिसका जन्म ईरान में हुआ था। इसकी अनेक शाखाएं या अनेक परम्पराएं थी जिन्हें सिलसिले कहा जाता था। चिश्ती व ऋषि सिलसिला उन्हीं शाखाओं में से थे जिन पर भारतीय अध्यात्मिक पद्धति का प्रभाव था। इस्लाम की इस रहस्यवादी धारा में ईश्वर को प्राप्त करने का मार्ग बताया जाता है।

कुरीतियों पर प्रहार : भक्ति आंदोलन का प्रभाव भी बहुमुखी था। यहाँ के सामाजिक, सांस्कृतिक व धार्मिक क्षेत्रों में इसका प्रभाव दिखाई पड़ा। इस आंदोलन में धार्मिक कुरीतियों पर प्रहार करके धर्म को नई दिशा प्रदान की। आंदोलन ने भक्ति द्वारा मुक्ति का मार्ग सभी सामाजिक वर्गों के लिए उपलब्ध करा कर सामाजिक समरसता को बढ़ाया।

धर्म को नई दिशा : भक्ति आंदोलन में धर्म को अध्यात्म से पुन: जोड़कर नई दिशा प्रदान की। संतों ने

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

धार्मिक आडम्बरों की आलोचना कर धर्म के रूप से पुनः अवगत कराया। संतों ने सादगी पूर्ण जीवन जीने पर बल दिया।

सभी के लिए मुक्ति का मार्ग खोलना : संतों ने जाति प्रथा का विरोध किया। उनका मानना था कि समाज के सभी वर्गों के लोग ईश्वर भक्ति से ईश्वर को प्राप्त कर सकते हैं। ईश्वर सबके लिए विद्यमान है जो उसकी सच्ची लग्न से भक्ति करेगा वही उसे प्राप्त कर लेगा। जात-पात ईश्वर द्वारा निर्मित नहीं है।

भारतीय आध्यात्मिक परम्परा से प्रभावित एक मुगल शहंजादा

राष्ट्रीय भक्ति आंदोलन का प्रभाव धर्म से भी ऊपर था। इसका एक उदाहरण मुगल शासक शाहजहां के पुत्र दारा शिकोह का है। दारा शिकोह मुगल शासक औरंगज़ेब का बड़ा भाई था। उसके पिता ने उसे अपना उत्तराधिकारी भी चुन लिया था। वह धार्मिक सहिष्णुता का प्रतीक माना जाता था। वह विचारों से उदार था।

चित्र-12. दारा शिकोह

इसलिए वह सातवें सिक्ख गुरु हरराय का बड़ा सम्मान करता था। सिक्ख गुरु हरराय भी उन्हें अपना मित्र मानते थे। वह प्राचीन भारतीय धर्म व दर्शन से बड़ा प्रभावित था। उसने अनेक उपनिषदों का फ़ारसी भाषा में अनुवाद करवाया, ये "सीर-ए-अकबर" नाम से संकलित हैं। इसी अनुवाद के माध्यम से भारतीय उपनिषदों का ज्ञान विदेशों तक पहुंचा। इतना ही नहीं उसने हिन्दू धर्म के वेदान्त व मुस्लिम धर्म में सूफीवादी विचारों का तुलनात्मक अध्ययन अपनी पुस्तक मज़्मा-उल-बेहरीन में किया। उसकी एक अन्य पुस्तक हसनात-उल-आरिफीन में धर्म व वैराग्य का विवेचन मिलता है। लेकिन दुर्भाग्य से शाहजहां के शासन के अन्तिम दिनों में उसके पुत्रों के बीच सिंहासन को लेकर उत्तराधिकार का युद्ध छिड़ गया। इस युद्ध में औरंगज़ेब ने दारा शिकोह की हत्या कर दी तथा 1658 ई. में स्वयं मुगल शासक बन गया।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

आओ चर्चा करें :

❖ यदि औरंगज़ेब की जगह उत्तराधिकार के युद्ध में दारा शिकोह की जीत होती तो इसके क्या प्रभाव पड़ते ?

भक्ति आंदोलन का सबसे प्रखर प्रभाव पंजाब में देखने को मिला जहाँ गुरु नानक देव की शिक्षाओं ने एक पंथ का मार्ग प्रशस्त किया। आगे चलकर गुरु नानक देव के अनुयायियों ने अलग पंथ की नींव रखी। साहित्य के क्षेत्र में भी भक्ति आंदोलन का विशेष प्रभाव देखने को मिला। संतों ने अपने विचारों व सिद्धांतों का प्रचार स्थानीय भाषा में किया। इससे स्थानीय भाषाओं को प्रोत्साहन मिला। भक्ति आंदोलन के संतों ने साहित्य की रचना की जिसमें जयदेव का 'गीत गोविंद,' कबीर का 'बीजक' तथा गुरु नानक देव का 'जपुजी' प्रमुख रचनाएँ थी। सामाजिक दृष्टि से भक्ति आंदोलन सामाजिक समरसता का प्रतीक था। इसमें सामाजिक समानता व आपसी भाईचारे की भावना प्रमुख थी जो धार्मिक सहनशीलता के लिए अति आवश्यक थी। भक्ति ने मानसिक शक्ति दी। इससे लोगों में आत्मविश्वास जागृत हुआ जिससे वे संगठित होने लगे। भक्ति आंदोलन ने राजनीतिक आंदोलनों को भी सुदृढ़ किया।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

आओ याद करें :

1. वैष्णव संत रामानुजाचार्य का जन्म 1017 ई. में चेन्नई के निकट श्रीपैरमबुदुर नामक स्थान पर हुआ।
2. 'गीत गोविंद' के रचनाकार जयदेव बंगाल के शासक लक्ष्मण सेन के दरबार में प्रमुख रत्न थे।
3. कबीर की रचनाओं का संकलन 'बीजक' नामक ग्रंथ में किया गया है।
4. कृष्ण भक्त रसखान का वास्तविक नाम सैय्यद इब्राहिम था।
5. दक्षिण भारत में अलवार वैष्णव संत व नयनार शैव संत थे।
6. आदि गुरु शंकराचार्य ने चार मठों की स्थापना की।
7. संत चैतन्य महाप्रभु ने 'कीर्तन' की प्रथा को लोकप्रिय बनाया था।
8. मुगल राजकुमार दारा शिकोह ने 'उपनिषदों' का फारसी भाषा में अनुवाद करवाया था।

रिक्त स्थान भरें :

1. दक्षिण भारत के वैष्णव संत ....थे।
2. संत कबीर.............................भक्तिधारा के संत थे।

3. धन्ना भगत का परिवार............................के लिए प्रसिद्ध था।
4. संत कवि रसखान का वास्तविक नाम............................था।
5. बंगाल में भक्ति धारा का प्रचार करने वाले प्रमुख संत............................थे।

उचित मिलान करें :

1.	नानक	बंगाल
2.	नामदेव	पंजाब
3.	धन्ना भगत	महाराष्ट्र
4.	चैतन्य	उत्तर प्रदेश
5.	कबीर	राजस्थान

आइए विचार करें :

1. भक्ति आंदोलन किस प्रकार राष्ट्रव्यापी था?
2. कबीर तथा गुरु रविदास के जीवन से किस प्रकार श्रम के महत्व का संदेश मिलता है।
3. क्या संतों ने समाज के सभी वर्गों के लिए मुक्ति का मार्ग खोल दिया?
4. सगुण तथा निर्गुण संत परम्परा में मुख्य अंतर क्या था?

आओ करके देखें :

1. क्या संत आज भी धार्मिक आडम्बरों से दूर है? पता लगाएं कि क्या वे आडम्बरों का सहारा लेते हैं?
2. क्या आज के संत भी सामाजिक समानता में विश्वास रखते हैं?

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

अध्याय

4

छत्रपति शिवाजी एवं पेशवा

आओ सीखें

आठवीं कक्षा के पहले अध्याय में हमने मुगलों के खिलाफ प्रतिरोध में हेमचंद्र विक्रमादित्य, महाराणा प्रताप तथा दुर्गावती की भूमिका के विषय में जानकारी प्राप्त की। इसी शृंखला में हम प्रस्तुत अध्याय में छत्रपति शिवाजी के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे। शिवाजी के संघर्षों, प्रशासनिक नीतियों, सैनिक प्रबंध व धार्मिक विचारों का अध्ययन करेंगे। इसके साथ ही शिवाजी के बाद उसके उत्तराधिकारी पेशवाओं ने किस प्रकार मराठा साम्राज्य को अटक से कटक तक विस्तृत किया तथा मुगल शासकों को भी संरक्षण दिया, इस बारे में भी जानेंगे।

चित्र-1. छत्रपति शिवाजी

बाज़ार के मुख्य चौक पर एक विशाल मूर्ति को देख कर विन्नी ने अपने पिताजी से पूछा, पिताजी, यह किसकी मूर्ति है?

पिताजी: बेटी यह शिवाजी महाराज की मूर्ति है।

विन्नी: पिताजी यहाँ इतनी विशाल मूर्ति लगाने का क्या कारण है?

पिताजी: बेटी यह हमारे महान योद्धा तथा पूर्वज हैं, जिन्होंने अपने प्राणों की परवाह किए बिना हमें विदेशी आक्रांताओं के अत्याचारों से बचाया। इन्हें देख कर हम सभी प्रेरित होते हैं। हमें अपने इन महान देशभक्तों के प्रति सच्ची श्रद्धा रखनी चाहिए तथा इनके योगदान को कभी नहीं भूलना चाहिए।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

सत्रहवीं शताब्दी में दक्षिण भारत में मराठों ने शिवाजी के नेतृत्व में शक्तिशाली मराठा राज्य की स्थापना की। छत्रपति शिवाजी महाराज गुलामी की जंज़ीर तोड़ने वाले, मुगल शासन की जड़ें हिलाने वाले, भारत को विदेशी एवम् आततायी सत्ता से मुक्त कराने वाले व जन-जन में स्वराज्य की भावना जगाने वाले कुशल प्रशासक, दृढ निश्चयी व योग्य रणनीतिकार थे। उन्होंने वर्षों तक औरंगज़ेब के साथ संघर्ष किया तथा अपने अदम्य साहस व पराक्रम के बल पर 'हिन्दवी स्वराज्य' की स्थापना की। शिवाजी ने अपनी अनुशासित सेना

एवम् सुसंगठित प्रशासनिक इकाइयों की सहायता से एक योग्य एवम् प्रगतिशील प्रशासन प्रदान किया। उन्होंने छापामार युद्ध की नई शैली विकसित की। प्राचीन भारतीय राजनैतिक प्रथाओं व दरबारी शिष्टाचारों को पुनः जीवित करके फारसी के स्थान पर मराठी व संस्कृत को राजभाषा बनाया। शिवाजी को महान शिवाजी बनाने में उनके गुरु 'समर्थ रामदास' व उस समय के संतों तुकाराम, नामदेव आदि के विचारों का योगदान रहा। उनका समस्त जीवन अनेक विजय गाथाओं, प्रेरक प्रसंगों तथा विस्मयकारी घटनाओं से परिपूर्ण है।

आरंभिक जीवन

शिवाजी का जन्म 19 फरवरी 1630 ई. को पूना के प्रसिद्ध शिवनेरी किले में हुआ था। किले की अधिष्ठात्री देवी के नाम पर इनका नाम शिवा रखा गया। इनके पिताजी का नाम शाहजी भोंसले था, जो मराठा सरदार थे एवम् अहमदनगर के निज़ामशाही राज्य में एक प्रतिष्ठित पद पर थे। इनकी माता का नाम जीजाबाई था।

गतिविधि : आप अपने क्षेत्र के प्रसिद्ध संतों के जीवन एवं शिक्षाओं का वर्णन कीजिए।

मराठा उत्कर्ष के प्रमुख कारण

भौगोलिक परिस्थितियां, औरंगज़ेब की धर्मांधता, हिंदू जागरण, मराठा संत कवियों का धार्मिक आंदोलन व शिवाजी का चमत्कारी व्यक्तित्व।

महादेव गोविंद रानाडे की प्रसिद्ध कृति "राइज आफ द मराठा पावर" है, जो मराठों के उत्थान से संबंधित इतिहास का वर्णन करती है।

शिवाजी का बचपन माता जीजाबाई के मार्गदर्शन में बीता। शिवाजी के चरित्र पर उनका गहरा प्रभाव पड़ा। जीजा बाई शिवा को बाल्यकाल में रामायण, महाभारत एवं भारतीय वीरात्माओं की कहानियाँ सुनाती थी, जिसका उनके जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा। उन्होंने शिवाजी को धर्म, संस्कृति एवं राजनीति की शिक्षा भी प्रदान की। दादा कोंडदेव ने घुड़सवारी, तलवारबाज़ी व निशानेबाज़ी की शिक्षा दी। शिवाजी बचपन में अपनी उम्र के बालक इकट्ठा करके, उनके राजा बन, युद्ध करके, किले जीतने का खेल खेला करते थे। बचपन से ही वे उस युग की घटनाओं को समझने लगे थे तथा मुगलों के अत्याचारों की कहानी सुनकर वे बैचेन हो जाते थे। उम्र बढ़ने के साथ-साथ मुगल शासन की बेड़ियाँ तोड़ फेंकने के विचार उनके मन में उठने आरम्भ हो गये थे।

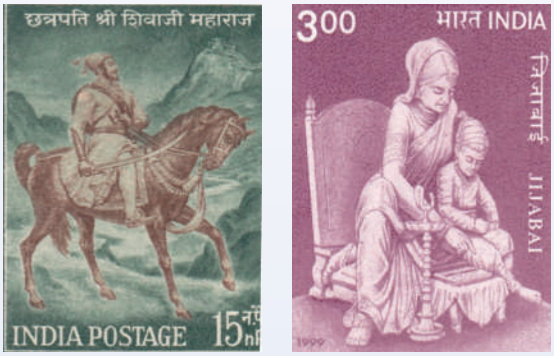

चित्र-2. छत्रपति शिवाजी एवं जीजाबाई पर भारत सरकार द्वारा जारी डाक टिकट

©BSEH Bhiwani Not to be republished

एक बार शिवाजी के पिता शिवाजी को राजा आदिलशाह से मिलाने के लिए उसके दरबार में ले गये। आदिलशाह के दरबार में शिवाजी ने स्वाभिमान का परिचय देते हुए उनको भूमि पर माथा टेककर प्रणाम नहीं किया। यह घटना उनके शौर्य और साहस को दर्शाती है।

शिवाजी का प्रारंभिक संघर्ष

उन्नीस वर्ष की आयु में शिवाजी ने अपना विजय अभियान आरम्भ किया। उन्होंने आस-पास के किलों पर कब्जा करने के लिए सभी जाति के लोगों को संगठित किया। युवकों के सहयोग से दुर्ग-विजय का कार्य आरम्भ किया। उस समय दक्षिणी राज्य आपसी संघर्ष से परेशान थे। 1643 ई. में शिवाजी ने सर्वप्रथम सिंहगढ़ का किला जीता। इसके बाद शिवाजी ने 1646 ई. में तोरण दुर्ग पर अपना अधिकार कर लिया। इससे आस-पास के मुस्लिम प्रदेशों में खलबली मच गई। तोरण दुर्ग पर अधिकार करने के बाद धीरे-धीरे रायगढ़ के किले को भी शिवाजी ने अपने अधिकार में ले लिया जो बाद में शिवाजी के राज्य की राजधानी बनी। शिवाजी की इस साम्राज्य विस्तार नीति से बीजापुर का शासक आदिलशाह बहुत क्षुब्ध हुआ। उसने शिवाजी के पिता शाहजी को कैद कर लिया। लेकिन शिवाजी ने बड़ी युक्ति व बुद्धिमता से पिता को कैद से मुक्त करा लिया। रायगढ़ के बाद उन्होंने 1647 ई. में चाकन के दुर्ग पर अधिकार कर लिया। चाकन दुर्ग के बाद कोंडाणा किले पर कब्जा कर लिया। शिवाजी ने 1654 ई. में पुरन्दर के किले को भी जीत लिया। इन किलों को जीतने के बाद शिवाजी ने मैदानी क्षेत्रों में प्रवेश करने की योजना बनाई तथा अपनी अश्वारोही सेना के बल पर कोंकण सहित नौ किलों पर अधिकार कर लिया।

अफज़ल खाँ का वध : शिवाजी की सतत सफलताओं ने बीजापुर के शासक की नींद हराम कर दी। 1659 ई. में बीजापुर के सुल्तान ने अपने सेनापति अफज़ल खाँ को अनेक प्रलोभन देकर शिवाजी के विरुद्ध लड़ने के लिए तैयार किया। वह बीजापुर के सर्वोच्च सेनापतियों की बड़ी सेना लेकर गया। अफज़ल खाँ युद्ध किए बिना ही शिवाजी को छल से मारना चाहता था। उसने भाईचारे व सुलह का झूठा नाटक कर अपने दूत कृष्णजी भास्कर को भेजकर शिवाजी को संधि प्रस्ताव भिजवाया, प्रस्ताव था कि "अगर शिवाजी बीजापुर की अधीनता स्वीकार कर ले तो उसे उन सभी क्षेत्रों का अधिकार प्राप्त होगा जो उसके नियन्त्रण में हैं, साथ ही उसे बीजापुर के दरबार में सम्मानित पद प्राप्त होगा।" कृष्णजी भास्कर ने शिवाजी को अफज़ल खाँ की शिवाजी को मारने की योजना के बारे में बता दिया। अत: शिवाजी इस सन्धि के लिए तैयार हो गए। प्रतापगढ़ के किले के पास दोनों के मिलने का स्थान निश्चित किया गया। शिवाजी जैसे ही पहुँचे अफज़ल खाँ ने गले मिलने के बहाने से अपने दोनों हाथ फैला कर कटार से वार करने की कोशिश की तो शिवाजी ने

चित्र-3. बाघ नख

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

बाघ–नख से अफज़ल खाँ को मार गिराया। यह एक ऐतिहासिक घटना थी। इस घटना के बाद शिवाजी की गणना श्रेष्ठ योद्धाओं में की जाने लगी।

शाइस्ता खाँ को हराना : शिवाजी की बढ़ती प्रभुता से मुगल शासक औरंगज़ेब बहुत चिंतित था। वह बीजापुर की सहायता से शिवाजी को हराना चाहता था, इसलिए औरंगज़ेब ने शाइस्ता खाँ को दक्षिण का गवर्नर बनाकर आदेश दिया कि मराठों के विरुद्ध आक्रामक नीति अपनाओ, उनके किले नष्ट कर धूल में मिला दो। शाइस्ता खाँ ने पूना के पूर्वी क्षेत्र में आक्रमण कर शिवाजी के किले जीतने प्रारम्भ किए। शिवाजी ने 15 अप्रैल 1663 ई. को पूना के किले पर आक्रमण किया। शाइस्ता खाँ ने खिड़की से भागकर जान बचाई, परन्तु उसका पुत्र फतेह खाँ मारा गया। शिवाजी के अचानक हुए इस हमले में शाइस्ता खाँ की उंगलियाँ कट गई। इस जीत व साहस से शिवाजी की प्रतिष्ठा और बढ़ गई।

पुरन्दर की सन्धि (22 जून 1665 ई.) : 1664 ई. में औरंगज़ेब ने अपने राज्य के योग्य व अनुभवी मिर्ज़ा राजा जयसिंह को शिवाजी के विरुद्ध अभियान के लिए नियुक्त किया। मिर्ज़ा राजा जयसिंह महान सेनानायक के साथ–साथ कूटनीतिज्ञ भी था। उसने बीजापुर के सुल्तान, यूरोपीय शक्तियों और छोटे–छोटे सामन्तों का सहयोग लेकर पुरंदर पर आक्रमण कर दिया। मिर्ज़ा राजा जयसिंह ने बड़ी ही चतुराई से पुरंदर के किले पर घेरा डाला। जब किले को बचाने में शिवाजी की कोई युक्ति काम नहीं आई तो शिवाजी ने मिर्ज़ा राजा जयसिंह के साथ वार्ता आरंभ की। शिवाजी व जयसिंह में संधि वार्ता हुई। संधि की शर्तें इस प्रकार थी:

- शिवाजी अपने 35 किलों में से 23 किले मुगलों को दे देंगे।
- शिवाजी दक्षिण भारत में मुगलों की तरफ से युद्ध में भाग लेंगे तथा उनके प्रति वफादार रहेंगे।
- शिवाजी के पुत्र शम्भाजी को मुगल दरबार में 5000 का मनसब दिया जाएगा।

जयसिंह के आग्रह पर पुरंदर की सन्धि के तहत शिवाजी 12 मई 1666 ई. औरंगज़ेब से मिलने आगरा पहुँचे। शिवाजी को औरंगज़ेब के दरबार में जैसे सम्मान व व्यवहार की अपेक्षा थी, उसके विपरीत व्यवहार देखकर शिवाजी ने औरंगज़ेब को विश्वासघाती कह दिया। इससे नाराज होकर औरंगज़ेब ने शिवाजी को नज़रबन्द कर दिया। अपने बेजोड़ साहस व युक्ति के साथ मदारी मेहतर के सहयोग से वे वहाँ से निकल गये तथा बनारस, प्रयाग, पुरी होते हुए रायगढ़ पहुँचे। इससे मराठों को नवजीवन मिल गया।

गतिविधि : क्या पुरंदर की संधि की शर्तें शिवाजी के पक्ष में थीं? आप अपने विचार प्रस्तुत कीजिए।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

'जयसिंह को शिवाजी का पत्र'

इस पत्र को पढ़ने से ज्ञात होता है कि शिवाजी के स्वराज्य के अन्तर्गत सम्पूर्ण भारत की कल्पना, जयसिंह को अपनी ओर मिलाने की उत्कृष्ट इच्छा तथा हिन्दुत्व की भावना के दर्शन होते हैं। इस पत्र में शिवाजी द्वारा जयसिंह के हृदय में हिन्दुत्व के भाव जागृत कर, औरंगज़ेब के विरुद्ध संघर्ष का आह्वान किया है। उन्होंने औरंगजेब की कूटनीति का पर्दाफाश किया कि किस तरह वह हिन्दू को हिन्दू से लड़वा रहा है।

हिन्दवी स्वराज्य की स्थापना

पश्चिमी महाराष्ट्र के बड़े क्षेत्र में अपना प्रभाव स्थापित करने के बाद शिवाजी का राज्याभिषेक 6 जून, 1674 ई. को हिन्दू रीति-रिवाज़ों से किया गया। उन्होंने 'छत्रपति' की उपाधि धारण की। इस समारोह में कई विद्वानों, विभिन्न राज्यों के दूतों व विदेशी व्यापारियों को भी आमन्त्रित किया गया। शिवाजी का राज्याभिषेक व हिन्दवी स्वराज्य की स्थापना सत्रहवीं शताब्दी के भारतीय इतिहास की अभूतपूर्व तथा सर्वाधिक प्रभावी घटना थी। इससे एक स्वतन्त्र वैधानिक मराठा राज्य का उदय हुआ। प्रशासन के मार्गदर्शन के लिए राज व्यवहार कोष तैयार किया गया, नया संवत चलाया गया, शुक्राचार्य व कौटिल्य को आदर्श मानकर नियम कानून बनाए गये। सोने और तांबे की मुद्राएँ जारी की गईं, जिन पर "श्री शिव छत्रपति" अंकित था। छत्रपति शिवाजी के राज्याभिषेक के पचास साल के भीतर मराठा सत्ता का भगवा ध्वज भारत के बड़े हिस्से में लहराने लगा।

शिवाजी का राज्याभिषेक : 6 जून 1674 ई. को काशी के प्रसिद्ध विद्वान गागाभट्ट के द्वारा हुआ। राज्याभिषेक के अवसर पर शिवाजी ने एक नया संवत और सोने तथा तांबे के सिक्के जारी किए। इन सिक्कों पर "श्री शिव छत्रपति" उत्कीर्ण कराया गया।

चित्र-4. छत्रपति शिवाजी की सोने व तांबे की मुद्राएं

शिवाजी की धार्मिक नीति : शिवाजी एक धार्मिक, सहिष्णु व समर्पित हिन्दू थे। उनके साम्राज्य में समानता, स्वतंत्रता व भ्रातृत्व था। वे सभी धर्मों का सम्मान करते थे। वे बलपूर्वक धर्मान्तरण के विरुद्ध थे। शिवाजी ने कई मस्जिदों के लिए अनुदान दिया। वे हिन्दू संतों की तरह मुसलमान संतों व फकीरों का भी पूरा सम्मान करते थे। उनकी सेना में सिद्दी इब्राहिम, दौलत खान, सिद्दी हिलाल, सिद्दी वाहवाह, क़ाजी हैदर तथा

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

मदारी मेहतर जैसे कई मुसलमान सैनिक व अधिकारी थे। उनके राज्य में पारम्परिक हिन्दू मूल्यों व हिन्दू संस्कृति का प्रचार-प्रसार किया जाता था। युद्ध के समय सभी सैनिकों को स्त्रियों के सम्मान की रक्षा करने का आदेश देते थे। उनके शासन काल में आंतरिक विद्रोह जैसी कोई घटना नहीं हुई।

छत्रपति शिवाजी की मृत्यु : लम्बी बीमारी से 3 अप्रैल 1680 ई. को वे इस संसार से विदा हो गये। इनकी मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्र शम्भाजी को राजा बनाया गया।

शिवाजी के उत्तराधिकारी	
शम्भाजी	1680-1689 ई.
राजाराम	1689-1700 ई.
ताराबाई	1700-1707 ई.
शाहूजी	1707-1749 ई.
राजाराम द्वितीय	1749-1750 ई.

शिवाजी महाराज एक महान योद्धा व कूटनीतिज्ञ थे। छत्रपति शिवाजी को उनके अदम्य साहस, बुद्धिमता व कुशल शासन के लिए याद किया जाता है। प्रसिद्ध इतिहासकार जदुनाथ सरकार के अनुसार ''मैं उन्हें हिंदू जाति द्वारा उत्पन्न किया हुआ अंतिम महान क्रियात्मक व्यक्ति एवं राष्ट्र निर्माता मानता हूँ। शिवाजी ने यह प्रमाणित करके दिखा दिया कि हिंदुत्व का वृक्ष वास्तव में मरा नहीं है, अपितु वह सदियों की राजनीतिक दासता, शासन से पृथकता और कानूनी अत्याचार के पश्चात् भी पुनः उठ सकता है। उसमें नवीन पत्ते और शाखाएँ आ सकती हैं, और वह एक बार फिर आकाश में सिर उठा सकता है।''

पेशवा के अधीन मराठा राज्य

पेशवा मराठा राज्य में प्रधान मंत्री का पद होता था। कालांतर में पेशवा ही शासक की शक्तियों का प्रयोग करने लगे। बाद में पेशवा ही शासक बन गए। पेशवाओं के उत्थान का मुख्य कारण मराठा शासक शाहूजी की नीतियां तथा महाराष्ट्र में राजनैतिक असंतोष था। इनका उत्थान न तो आकस्मिक और न ही अभूतपूर्व है, उन्होंने धीरे-धीरे साधारण स्थिति से राज्य के प्रमुख और फिर पूर्ण आधिपत्य प्राप्त किया। इसने इस पद को अपने परिवार में वंशानुगत बनाकर अपने अन्य साथियों को तथा बाद में स्वयं राजा की शक्ति को निःशक्त कर दिया। आरम्भ में इनका लक्ष्य शासक के प्रतिनिधि को हटाकर राज्य में सर्वोच्च स्थिति प्राप्त करना था और एक सर्वोच्च स्थिति प्राप्त करने के पश्चात् राजा को भी अपना स्थान इन्हें समर्पित करना पड़ा।

बालाजी विश्वनाथ (1713 ई.-1720 ई.) : बालाजी विश्वनाथ मराठा शासक शाहू महाराज का पूर्ण विश्वासपात्र था। वह 'सेनाकर्त्ता' अर्थात् सेना के प्रबंधक के पद पर नियुक्त हुआ। बालाजी विश्वनाथ के चरित्र, स्वामीभक्ति और योग्यता से शाहू महाराज प्रभावित थे। इसी समय दिल्ली में नया मुगल शासक नियुक्त करने के लिए मुगल दरबारियों में कूटनीतिक संघर्ष चल रहा था। बालाजी विश्वनाथ को 1719 ई. में मुगल दरबारी सैयद बंधुओं की सहायता के लिए दिल्ली से निमंत्रण आया। परिणाम स्वरूप मराठा-मुगल संधि संपन्न हुई। बालाजी विश्वनाथ को नए सम्राट मोहम्मदशाह से तीन बख्शीशें (अनुदान) मिली जो आगे जाकर भारतवर्ष में मराठा

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

सत्ता की आधारशिला बनी। सर रिचर्ड टैम्पल ने बालाजी विश्वनाथ के चरित्र और सफलताओं का वर्णन करते हुए कहा है कि "वह एक शांत, दूरदर्शी, शासन के गुणों से संपन्न, उच्चाभिलाषी और विचारशील आसुरी शक्ति को चरित्र बल से जीतने वाला था। उसने शक्ति द्वारा मुगलों को मराठों को स्वाधीन मानने के लिए बाध्य कर दिया।" बालाजी विश्वनाथ राजनैतिक क्षेत्र में अजेय रहकर मुसलमानों की शक्ति से ध्वंसावशेषों पर हिन्दू राज्यों की स्थापना का प्रयत्न करता हुआ दुर्भाग्यवश अकाल मृत्यु को प्राप्त हुआ।

मराठा मैग्नाकार्टा

1719 ई. की मराठा-मुगल संधि को रिचर्ड टेंपल ने मराठा मैग्नाकार्टा कहा। इस संधि के अनुसार शाहू को मराठा राज्य का स्वामी स्वीकार कर लिया गया। मराठो को दक्षिण भारत के छः प्रदेशों से चौथ और सरदेशमुखी वसूल करने की अनुमति दी गई। अवसर पड़ने पर पेशवा ने मुगल बादशाह को सैनिक सहायता देना स्वीकार किया।

बाजीराव प्रथम (1720 ई.-1740 ई.)

बाजीराव विश्वनाथ की मृत्यु के पश्चात उसका ज्येष्ठ पुत्र बाजीराव पेशवा बना। छोटी आयु होने पर भी बाजीराव तीव्र बुद्धि और बलवान शरीर का था। वह राजनीतिक और शासन कार्य में दक्ष था। वह इस महत्वपूर्ण निष्कर्ष पर पहुँचा कि मुगल सत्ता का ह्रास हो रहा है, और इस समय उससे क्षेत्र छीनना सम्भव है। बाजीराव ने यह ललकार दी, "यह समय आततायियों को हिन्दुस्तान से बाहर करने और अक्षय यश प्राप्त करने का है। आओ, हम उस मृतप्राय वृक्ष (मुगल राज्य) की जड़ों पर कुठाराघात करें, जिससे इसकी शाखाएँ स्वयं ही गिर पड़ेंगी। यदि हम अपने संघर्ष को हिन्दुस्तान (उत्तर भारत) की ओर अग्रसर करें तो मराठा ध्वज कृष्णा से अटक तक फहराएगा।" बाजीराव प्रथम को लड़ाकू पेशवा के रूप में स्मरण किया जाता है। वह शिवाजी के बाद गुरिल्ला युद्ध का सबसे बड़ा प्रतिपादक था।

बाजीराव की ललकार

आओ, हम उस मृतप्राय वृक्ष की जड़ों पर कुठाराघात करें जिससे इसकी शाखाएँ स्वयं ही गिर पड़ेंगी। यदि हम अपने संघर्ष को हिन्दुस्तान की ओर अग्रसर करें तो मराठा ध्वज कृष्णा नदी से अटक तक फहराएगा।

मस्तानी

1728 ई. में बुन्देलखंड नरेश छत्रसाल ने मुगलों के विरुद्ध बाजीराव से सैनिक सहायता मांगी। सैनिक सहायता से लाभान्वित होकर 1728 ई. में छत्रसाल ने पेशवा के सम्मान में एक दरबार का आयोजन किया। उसने पेशवा को कई जागीरें तथा एक मुस्लिम नर्तकी मस्तानी भेंट की।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

बाजीराव प्रथम ने हिंदू पादशाही का आदर्श रखा। बाजीराव ने राज्य की सेना को पुनः संगठित किया। 1731 ई. में बहुत से प्रदेशों में मराठों का चौथ और सरदेशमुखी का अधिकार सर्वमान्य हो गया। बुन्देलखंड को 1737 ई. में विजय किया और दिल्ली की ओर कूच किया। दक्कन से निज़ाम-उल-मुल्क मुगल सम्राट की सहायता के लिए आगे बढ़ा किन्तु भोपाल के निकट उसे पराजय का मुंह देखना पड़ा। उसने औपचारिक रूप से मालवा और गुजरात मराठों को देने पड़े। प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ. डिघे के मतानुसार ''भोपाल विजय मराठों की सफलता अभियान का सर्वोच्च समय था। मुसलमानों की संयुक्त सेना को भोपाल में हराकर पेशवाओं ने मराठों की सैनिक शक्ति को सारे भारतवर्ष में श्रेष्ठ सिद्ध कर दिया''। निज़ाम-उल मुल्क ने बाजीराव को 50 लाख रुपये युद्ध की क्षति के रूप में देना भी स्वीकार किया। मराठों ने पुर्तगालियों से 1739 ई. में बसीन का द्वीप छीन लिया। बाजीराव मराठा शक्ति की नींव दृढ़ करके 1740 ई. में चल बसा।

बालाजी बाजीराव (1740 ई.-1761 ई.) : बाजीराव की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र बालाजी बाजीराव पेशवा बना। बालाजी बाजीराव स्वयं प्रतिभाशाली व्यक्ति नहीं था। वह प्रत्येक बात में अपने चचेरे भाई सदाशिव भाऊ की सम्मति का लाभ उठाता था। सदाशिव भाऊ की देखरेख में ही मराठों की शक्ति 1740 ई. में उच्चत्तम शिखर पर पहुँची। रघुजी भोंसले ने कई बार मध्य भारत में मुगलों को रौंद डाला और बंगाल पर चढ़ाई की। 1750 ई. में रघुजी भोंसले की मध्यस्थता में राजाराम द्वितीय तथा बालाजी बाजीराव के मध्य संगोला की संधि हुई। इस संधि के अनुसार मराठा छत्रपति केवल नाममात्र के राजा रह गए। मराठा संगठन का वास्तविक नेता पेशवा को बना दिया गया। अब मराठा राजनीति का केंद्र पूना हो गया। 1751 ई. में उसने बंगाल के शासक अलीवर्दी खान को उड़ीसा का प्रदेश मराठों को देने के लिए विवश किया और बंगाल और बिहार के प्रदेशों की चौथ भी मराठों को देने के लिए बाध्य किया। 1752 ई. और 1756 ई. के काल में मराठों को मुगल साम्राज्य से उत्तर भारत के राजस्व से चौथ लेने का आश्वासन प्राप्त हुआ। 1758 ई. में मराठों ने

उत्तरवर्ती पेशवा काल 1761-1818 ई.

माधवराव	1761-1772 ई.
नारायणराव	1772-1773 ई.
माधव नारायणराव	1774-1795 ई.
बाजीराव द्वितीय	1795-1818 ई.

पानीपत का तृतीय युद्ध

14 जनवरी 1761 को सदाशिव राव भाऊ तथा अहमदशाह अब्दाली के मध्य युद्ध हुआ। कड़े संघर्ष के बाद युद्ध में मराठों की हार हुई। इस युद्ध में विश्वास राव, सदाशिव राव भाऊ, जसवंत राव, तंकोजी सिंधिया जैसे सरदार तथा लगभग 28000 सैनिक काम आए। मराठा इतिहासकार कांशीराज पंडित के अनुसार, ''पानीपत का तृतीय युद्ध मराठों के लिए प्रलयकारी सिद्ध हुआ।''

©BSEH, Bhiwani. Not to be republished

पंजाब पर अधिकार किया और अटक के किले पर मराठों का ध्वज फहराया। अहमदशाह अब्दाली ने मराठों की इस चुनौती को स्वीकार किया। रोहिल्ला सरदार नज़ीबुद्दौला तथा अवध के नवाब शुजाउद्दौला ने अहमदशाह अब्दाली का साथ दिया क्योंकि यह दोनों ही मराठा सरदारों के हाथों हार चुके थे। प्रसिद्ध इतिहासकार सिडनी ओवल के अनुसार ''अहमदशाह अब्दाली एक कट्टर मुस्लिम होने के कारण मराठों के अपने सहधर्मियों के विरुद्ध अभियानों का विरोधी था। अतः उसने युद्ध का निश्चय किया।'' अतः दोनों सेनाओं के बीच 1761 ई. में पानीपत में युद्ध हुआ। मराठों तथा बालाजी बाजीराव के लिए यह युद्ध निर्णायक सिद्ध हुआ। इस युद्ध में मराठों की पराजय हुई। उन्हें भारी सैनिक क्षति उठानी पड़ी। बालाजी बाजीराव इस पराजय को सहन नहीं कर सके तथा 23 जून 1761 को आकस्मिक मृत्यु को प्राप्त हुए।

''दो मोती विलीन हो गए, 27 सोने की मोहरें लुप्त हो गई और चाँदी तथा ताँबे की तो पूरी गणना ही नहीं की जा सकती'' एक व्यापारी द्वारा 1761 ई. में पानीपत के युद्ध में मराठों की जन हानि का कूट संदेश।

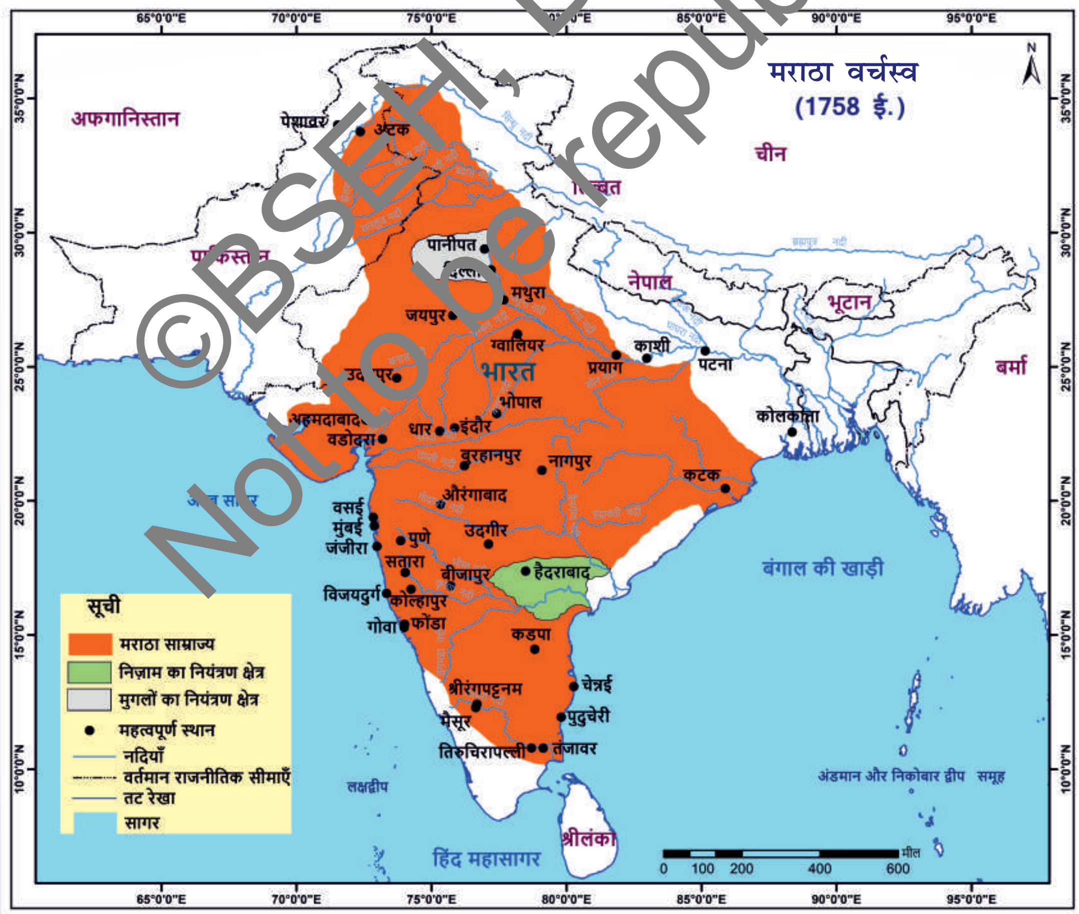

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

मराठा प्रशासन

मराठा प्रशासन प्राचीन भारतीय परंपरा पर आधारित था। शिवाजी के समय में मराठा प्रशासन का स्वरूप अत्यधिक विस्तृत था। प्रशासन को व्यवस्थित तरीके से चलाने के लिए अनेक विभागों की संरचना की गई थी।

छत्रपति : शिवाजी के समय स्वयं महाराजा प्रशासन का केंद्र बिंदु होता था। महाराजा प्रमुख रूप से 'छत्रपति' की उपाधि धारण करता था। छत्रपति का राज्याभिषेक वैदिक परंपरा के अनुसार भव्य समारोह में किया जाता था। शिवाजी ने राज्यभिषेक के समय हिंदू पातशाही अंगीकार कर, गाय और ब्राह्मणों की रक्षा का व्रत लिया। ''हिंदुत्व-धर्मोद्धारक'' की पदवी धारण की। छत्रपति सेना, वित्त, न्याय, धर्म व प्रशासन का मुखिया था। इस प्रकार महाराज मराठा प्रशासन का केंद्र बिंदु व उच्चतम शिखर था। शिवाजी की मृत्यु के बाद महाराजा की शक्ति धीरे-धीरे क्षीण हो गई और उसकी जगह पेशवा ने प्राप्त कर ली।

अष्टप्रधान परिषद

शिवाजी ने प्रशासन में सहायता व परामर्श के लिए आठ मंत्रियों की एक परिषद की नियुक्ति की, इसे अष्टप्रधान कहा जाता था। इसका प्रमुख कार्य राजा को परामर्श देना मात्र था। परामर्श स्वीकार करना छत्रपति का निर्णय होता था। सामान्यतः अष्टप्रधान का कार्य शिवाजी के निर्देशों का पालन करना तथा अपने विभागों की निगरानी करना मात्र था। अष्टप्रधान के मंत्री शिवाजी के प्रति उत्तरदायी था।

पेशवा : यह राजा का प्रधानमंत्री होता था। राजा की अनुपस्थिति में उसके कार्यों की देखभाल भी पेशवा ही करता था। सरकारी पत्रों तथा दस्तावेज़ों पर छत्रपति की मोहर के बाद अपने हस्ताक्षर करता था। शिवाजी के समय पेशवा ज़्यादा शक्तिशाली नहीं था। शिवाजी की मृत्यु के उपरांत राजनैतिक गड़बड़ी का सबसे ज़्यादा लाभ पेशवा पद को प्राप्त हुआ। शाहू महाराज के समय पेशवा पद वंशानुगत हो गया। 1750 ई. की संगोली की संधि के बाद पेशवा ने छत्रपति की सत्ता का संपूर्ण हस्तांतरण कर लिया।

प्रमुख विभाग एवं मंत्री

मंत्री	विभाग
पेशवा	प्रधानमंत्री
अमात्य	वित्त एवं राजस्व मंत्री
वाकिया-नवीस	दरबार की गतिविधियों, कार्यों का विवरण
दबीर/सुमंत	विदेश मंत्री
आरम्भ-नवीस/सचिव	राजकीय पत्र व्यवहार
सर-ए-नौबत	प्रमुख सेनापति
न्यायधीश	प्रमुख न्यायाधीश
पंडितराव	धार्मिक मामले

भू-राजस्व व्यवस्था : मराठा राज्य की आय का प्रमुख साधन कृषि कर

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

तथा अन्य प्रचलित कर थे। सरदेशमुखी कर के रूप में किसानों के उत्पादन का दसवां भाग वसूला जाता था। दूसरा महत्वपूर्ण आय का साधन चौथ नामक कर था। यह पड़ोसी राज्य से उसकी आय का 1/4 भाग के रूप में वसूला जाता था। इसके अलावा गृह कर, सिंचित भूमि कर, सीमा शुल्क आदि राज्य की आय के प्रमुख साधन थे।

प्रांतीय प्रशासनिक अधिकारी

इकाई	अधिकारी
प्रांत / सरसूबा	वायसराय/प्रतिनिधि/सरे-कारकुन/ देशाधिकारी/सर-सूबेदार
महाल/परगना	सर-हवलदार
तरफ/मौजें	हवलदार
गांव	पटेल/पाटिल

सेना व्यवस्था : शिवाजी के समय मराठों के पास एक अत्यंत शक्तिशाली सेना थी, जिसका वेतन सीधे शाही खजाने से दिया जाता था। शिवाजी कभी भी सामंतों की सेना पर निर्भर नहीं रहे। इस समय मराठा सेना में पदाति घुड़सवार प्रमुख थे। घुड़सवारों को बारगीर, सिलेदार, पागा आदि प्रमुख श्रेणियो में बांटा जाता था। सेना नियमित तथा हथियारों से सुसज्जित थी। संपूर्ण सेना 'सर-ए-नौबत' नामक अधिकारी के अधीन आती थी। शिवाजी ने अपनी सेना में सभी धर्मों और जातियों के सैनिकों को शामिल किया। उसने कोलाबा में एक जहाजी बेड़े का भी निर्माण करवाया। पेशवाओं के अधीन केंद्रीय सेना का स्वरूप सामंतशाही हो गया था। उन्होंने सेना को नकद वेतन के बदले बड़ी-बड़ी जागीरें बांटना आरंभ कर दिया। पेशवाओं ने तोपखाना बनाने के लिए पुणे तथा जुन्नर में अपने कारखाने स्थापित किए।

परवर्ती राज्य विघटन

पेशवा	पूना
सिंधिया	ग्वालियर
होल्कर	इंदौर
गायकवाड	बड़ौदा
भौंसले	नागपुर

न्याय प्रणाली : मराठा साम्राज्य में न्याय प्राचीन भारतीय परम्पराओं के अनुसार किया जाता था। न्याय का सर्वोच्च मुखिया छत्रपति अथवा पेशवा होता था। वह न्यायधीश एवं पंडितराव की सहायता से निर्णय देता था। शिवाजी का न्यायालय धर्मसभा या हुजूर-हाज़िर मजलिस कहा जाता था। गांव में पटेल, जिले में मामलतदार, सूबे में सर-सूबेदार न्याय का कार्य करते थे। गांव के झगड़ों का फैसला पंचायत करती थी। मराठों की न्याय प्रणाली काफी कठोर व सुधारात्मक थी।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

गतिविधि : वर्तमान में सरकार के कौन से महत्वपूर्ण विभाग हैं? इन विभागों के कार्यों के बारे में जानकारी प्राप्त करें।

इस प्रकार हम देखते हैं कि दक्षिण भारत में शिवाजी के नेतृत्व में मराठों ने शक्तिशाली राज्य का संगठन किया। पेशवाओं ने शिवाजी की क्षेत्र विस्तार की नीति को और अधिक फैलाया। संपूर्ण भारत में मराठों का भगवा झंडा लहराने लगा था। 19वीं शताब्दी के आरम्भ में मराठा साम्राज्य का विघटन आरंभ हो गया तथा ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने मराठा सरदारों के साथ सहायक संधियां स्थापित करके मराठा राज्य को क्षीण कर दिया।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

आओ याद करें :

1. 'राइज ऑफ द मराठा पॉवर' की रचना महादेव गोविंद रानाडे ने की थी।
2. शिवाजी का जन्म 19 फरवरी 1630 ई. को पूना में शिवनेरी दुर्ग में हुआ था।
3. शिवाजी का राज्याभिषेक 6 जून 1674 ई. को पंडित गंगा भट्ट द्वारा किया गया।
4. बीजापुर के सेनापति अफज़ल खान ने शिवाजी को गले लगाने के बहाने से कटार से वार करने का प्रयास किया लेकिन शिवाजी ने बाघ-नख से अफजल खान को मार गिराया।
5. मुगल सेनापति राजा जयसिंह एवं शिवाजी के मध्य 22 जून, 1665 ई. को पुरंदर की संधि हुई।
6. 14 जनवरी, 1761 ई. को मराठो एवं अहमद शाह अब्दाली के मध्य पानीपत का तृतीय युद्ध हुआ।
7. मराठा पेशवा बाजीराव प्रथम ने 1739 ई. में पुर्तगालियों से बसीन द्वीप छीन लिया था।
8. शिवाजी के गुरु का नाम समर्थ गुरु रामदास था।

रिक्त स्थान भरें :

क) 'राइज ऑफ मराठा पावर' पुस्तक............. ने लिखी।

ख) 'पुरंदर की संधि' के समय विदेशी इतिहासकार........... उपस्थित था।

ग) शिवाजी की माता का नाम........... था।

घ) ....को 'मराठा मैग्नाकार्टा' कहा जाता है।

ड) राज्याभिषेक के अवसर पर शिवाजी ने........ उपाधि धारण की।

उचित मिलान करें :

1. शिवाजी का राज्याभिषेक	विदेश मंत्री
2. बाजीराव प्रथम	सदाशिव राव भाऊ
3. पानीपत का तीसरा युद्ध	शाह जी भोंसले
4. सुमंत	महान मराठा योद्धा
5. शिवाजी का पिता	6 जून 1674 ई.

अर्थ ज्ञात करें :

छत्रपति, अष्टप्रधान परिषद, बलपूर्वक धर्मांतरण, गुरिल्ला युद्ध।

आइए विचार करें :

क) छत्रपति शिवाजी महाराज का जीवन परिचय बताएं।

ख) हिंदू स्वराज की स्थापना हेतु शिवाजी महाराज के संघर्ष का वर्णन करें।

ग) पेशवा बाजीराव प्रथम के संघर्ष और योगदान का वर्णन करें।

घ) मराठों के प्रशासन की प्रमुख विशेषताएं कौन-कौन सी थी?

ड) मराठों की भू-राजस्व व्यवस्था कैसी थी।

©BSEH Bhiwani
Not to be republished

अध्याय

5

सत्रहवीं शताब्दी में मुगलों का क्षेत्रीय प्रतिरोध

बाबर ने 1526 ई. में इब्राहिम लोदी को पानीपत के युद्ध में हराकर भारत में मुगल साम्राज्य की स्थापना की। उसे अपने साम्राज्य का विस्तार करने के लिए राणा संग्राम सिंह व मेदिनीराय जैसे वीर राजपूत शासकों से भी युद्ध करना पड़ा। बाबर के बाद उसके पुत्र हुमायूं को तो जीवनभर प्रतिरोधों का सामना करना पड़ा। अकबर को हेमचन्द्र (हेमू) विक्रमादित्य से पानीपत के मैदान में युद्ध लड़कर भारत की सत्ता प्राप्त हुई। अकबर ने राजपूत शासकों की वीरता, वफादारी व शौर्य को देखते हुए उनके साथ मित्रतापूर्ण संबंध स्थापित किया। यद्यपि उसे भी मेवाड़ के शूरवीर राणा उदय सिंह व महाराणा प्रताप से जीवन भर संघर्ष करना पड़ा लेकिन अन्य राजपूत शासकों ने मुगलों की मित्रता स्वीकार कर ली। जहांगीर व शाहजहां ने भी अपने पूर्वज अकबर की राजपूतों के प्रति मित्रता की नीति को लगभग बनाए रखा। शाहजहां को बंदी बनाकर उसका पुत्र औरंगज़ेब, राजगद्दी पर बैठा। वह धार्मिक रूप से कट्टर सुन्नी मुसलमान था तथा उसके मन में हिन्दुओं के प्रति घृणा व्याप्त थी। लेकिन राजपूतों की वीरता व शौर्य का उसके अंदर भय था। इस कारण उसने प्रकट रूप से आमेर के राजा जयसिंह व जोधपुर के राजा जसवंत सिंह के जीवित रहते अपनी धार्मिक कट्टरता की नीति का प्रदर्शन नहीं किया।

उसकी धार्मिक कट्टरता की नीति के फलस्वरूप राजपूत ही नहीं अपितु खेती करने वाली शारीरिक रूप से मजबूत जाट जाति भी मैदान में उसके विरुद्ध आ डटी। यही नहीं राम नाम जपने वाले साधु-संन्यासी वर्ग के लोगों, सतनामी व बैरागियों ने भी मुगलों से टक्कर ली। विश्व के उस समय के विशाल साम्राज्यों में से एक मुगल साम्राज्य की ईंट से ईंट बजा दी। इससे यह साम्राज्य कमज़ोर हुआ तथा बाद में इसका पतन हो गया। इन जातियों के वीरता एवं शौर्यपूर्ण संघर्ष का वर्णन निम्नानुसार किया जा सकता है:

राजपूत

अरबी और तुर्क आक्रमणकारियों ने आक्रमण करने आरंभ किए तो उत्तर और पश्चिमी भाग में क्षत्रियों ने इनका डटकर विरोध किया। आज इन क्षत्रियों में से कुछ के लिए राजपूत (राजपुत्र) शब्द का प्रयोग किया जाता है। इतिहासकारों का मत है कि विदेशी आक्रमणकारियों से हो रहे इस घोर संघर्ष के चलते जब क्षत्रियों की संख्या में कमी आने लगी तो विभिन्न जातियों के युवाओं ने मिलकर क्षत्रीय परंपरा को बढ़ाने के लिए स्वंय को समर्पित किया। विभिन्न जातियों से बने इस समूह को राजपूत कहा जाने लगा। इन्हें अग्निकुल अथवा अग्निवंश के नाम से भी जाना जाता है। हम राणा सांगा और महाराणा प्रताप के विषय में पहले ही पढ़ चुके हैं। ऐसे ही एक अन्य योद्धा हैं 'दुर्गादास राठौड़।'

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

जोधपुर के राजा जसवन्त सिंह की मृत्यु के समय उसकी दोनों पत्नियां गर्भवती थी और दोनों ने एक-एक पुत्र को जन्म दिया। एक बच्चे की शीघ्र ही मृत्यु हो गई परिणामस्वरूप अकेला बचा हुआ बच्चा अजीत सिंह राज्य का उत्तराधिकारी बन गया। दिल्ली के राजा औरंगज़ेब ने सत्ता हथियाने के लिए इस बच्चे को रानियों सहित बंधक बना लिया और अपने विश्वासपात्र इंद्र सिंह को मारवाड़ का शासक घोषित कर दिया। इससे क्रुद्ध राजपूतों ने जब औरंगज़ेब से अजीत सिंह को उत्तराधिकारी स्वीकार करने के लिए निवेदन किया तो औरंगज़ेब ने मना कर दिया। वह चाहता था कि अजीत सिंह का पालन पोषण मुगल हरम में हो। ये शर्तें राजपूतों को स्वीकार्य नहीं थीं।

चित्र-1. भारत सरकार द्वारा दुर्गादास राठौड़ पर जारी डाक टिकट

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

इन राजपूतों में दुर्गादास राठौड़ भी थे जो जसवन्त सिंह के मंत्री के बेटे थे। उन्होंने निर्णय किया कि रानियों और बच्चे को दिल्ली से बचाकर लाएंगे, भले ही इसके लिए जान क्यों न चली जाए। राजपूतों ने मुगलों से दोनों रानियों और भावी राजा अजीत सिंह को मुक्त करवा लिया। मुगल उनका पीछा करते रहे लेकिन दुर्गादास और उनके साथी मुगलों के हाथ नहीं आए। औरंगज़ेब ने अपनी सेना मारवाड़ (जोधपुर) भेज दी ताकि वह लूट-पाट कर सके। वहाँ के बहुत से मंदिरों को तोड़ दिया गया। इन्हीं दिनों औरंगज़ेब ने सारे देश पर जज़िया कर लगा दिया।

दुर्गादास अपने साथियों सहित मुगलों की सेना पर गुरिल्ला-युद्ध विधि के अन्तर्गत हमले करते रहे। औरंगज़ेब ने मारवाड़ और मेवाड़ पर कब्जा करने के लिए अपने बेटे अकबर द्वितीय को नियुक्त किया। लेकिन अकबर द्वितीय ने अपने पिता के विरुद्ध विद्रोह कर दिया और मुगल सेना को मेवाड़ से पीछे हटना पड़ा। राजपूतों को इससे राहत मिली क्योंकि राजकुमार अकबर द्वितीय उनसे मिल गया था। दुर्गादास राठौर ने इस विद्रोह में अकबर द्वितीय का साथ दिया। लेकिन अकबर द्वितीय का विद्रोह असफल रहा और वह दुर्गादास के साथ दक्षिण चला गया। उसके बच्चे दुर्गादास के संरक्षण में थे जिन्हें औरंगज़ेब लेना चाहता था। इस विवशता के कारण उसने दुर्गादास से समझौता कर लिया। जब उसने पाया कि दुर्गादास ने अकबर द्वितीय के बच्चों को इस्लामी पद्धति से पढ़ने दिया है तो वह दुर्गादास से बहुत प्रभावित हुआ और उसने दुर्गादास को सम्मानित किया। अब तक अजीत

चित्र-2. कर्मठ एवं स्वामिनिष्ठ दुर्गादास राठौड़ अपने घोड़े पर

गतिविधि : दुर्गादास राठौड़ के मुगलों के साथ संघर्ष पर एक अनुच्छेद लिखिए।

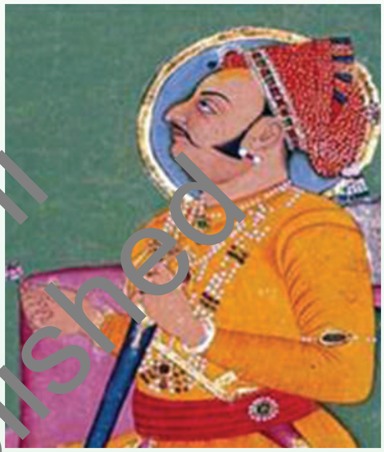

चित्र-3. राजा अजीत सिंह

सिंह युवा हो गए। वह इस योग्य हो गया था कि शासन कर सके जो कि दुर्गादास का उद्देश्य था। सन् 1707 ई. में औरंगज़ेब की मृत्यु होते ही मुगल शासन में अस्थिरता आ गई थी। इस अस्थिरता का लाभ उठकर दुर्गादास ने जोधपुर रियासत से मुगल सेना को भगा दिया और अजीत सिंह को वहां का शासक घोषित कर दिया। तत्पश्चात् दुर्गादास ने मुगलों द्वारा नष्ट और अपवित्र किए गए मंदिरों का पुनः निर्माण करवाया। उसके बाद वे उज्जैन स्थित महाकाल के दर्शन करने गया जहां उनकी मृत्यु हो गई। दुर्गादास राठौड़ का जीवन एक ऐसे राष्ट्रभक्त का है, जिसने शुद्ध अंतःकरण से सफलतापूर्वक अपने कर्त्तव्य निभाए।

विशिष्ट शब्दावली

जज़िया: जज़िया एक प्रकार का धार्मिक कर है। इसे मुस्लिम राज्य में रहने वाली गैर-मुस्लिम जनता से वसूल किया जाता है। इस्लामी राज्य में केवल मुसलमानों को ही रहने की अनुमति थी और यदि कोई गैर-मुसलमान उस राज्य में रहना चाहे तो उसे जज़िया देना होता था।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

गतिविधि : दुर्गादास ने कभी भी राजा बनने का विचार नहीं किया और अजीत सिंह के युवा होने तक उसका संरक्षक बन कर रहा। उसकी इस भावना को आप क्या नाम देना चाहेंगे?

ऐसा नहीं है कि राजपूतों ने केवल रणभूमि में ही अपने कौशल दिखाए हों। जब अवसर मिला, उन्होंने वैदिक संस्कृति और ज्ञान-विज्ञान को भी बचाने और उसका प्रसार करने के प्रयत्न किए। इसका एक उदाहरण हमें जयपुर के कच्छवाहा शासक सवाई जयसिंह के रूप में मिलता है। इन्होंने ही जयपुर शहर का निर्माण करवाया था। इस नगर की रूपरेखा एक बंगाली विद्वान विद्याधर भट्टाचार्य ने वास्तु शास्त्र और शिल्प शास्त्र के नियमों के अनुसार बनाई थी। जयपुर से पहले कच्छवाहा शासकों की राजधानी आमेर थी। जयपुर का निर्माण कर उसे नई राजधानी घोषित किया गया।

चित्र-4. जयपुर स्थित वेधशाला (जंतर-मंतर)

सवाई जयसिंह को लगता था कि भारत के लोगों को खगोल विद्या का भी ज्ञान होना चाहिए इसलिए उन्होंने भारतीय खगोल शास्त्र के आधार पर पांच खगोलीय-वेधशालाओं का निर्माण करवाया। उन्हें आज 'जन्तर-मन्तर' के नाम से जाना जाता है लेकिन इनका वास्तविक नाम 'यंत्र-मंत्र' था। यंत्र का अर्थ होता है वैज्ञानिक उपकरण और मंत्र का अर्थ होता है गणना अथवा परामर्श। ये अद्भुत यंत्र जयपुर, दिल्ली, काशी, मथुरा और उज्जैन में बनवाए गए थे। इनमें से जयपुर, मथुरा और काशी के यंत्र आज भी उपयोग में हैं। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि आज भी यह यंत्र सटीक समय बताते हैं और चंद्र ग्रहण अथवा सूर्य ग्रहण की भविष्यवाणी करने के लिए उपयोग किए जा सकते हैं। इतना ही नहीं, इनकी सहायता से सौर मण्डल के अन्य ग्रहों का भी अध्ययन किया जा सकता है।

गतिविधि : सवाई जयसिंह द्वारा बनवाई गई वेधशालाएं वर्तमान में किस-किस राज्य में स्थित हैं उन्हें मानचित्र पर अंकित करें?

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

राजपूत स्त्रियाँ

राजपूत महिलाओं का चरित्र कैसा था? इसे समझने के लिए हम राजस्थान के राजा जसवंत सिंह के जीवन की एक घटना का उदाहरण देते हैं। राजा जसवंत सिंह दारा शिकोह के समर्थन में औरंगज़ेब से युद्ध कर रहे थे। इस युद्ध में बहुत से राजपूतों की मृत्यु हो गई और जसवंत सिंह बहुत कठिनाई से बच पाए। फ्रांसीसी इतिहासकार बर्नियर के अनुसार राजा जसवंत सिंह की पत्नी को जब राजमहल में यह सूचना मिली कि राजा अपने आठ हजार बहादुर राजपूतों में से, युद्ध के बाद बचे हुए, पांच सौ सैनिकों के साथ लौट रहा है। उसने महल के द्वार उसके लिए बंद करने का आदेश दे दिया। रानी ने कहा यदि वह युद्ध में विजय प्राप्त नहीं कर सका, तो

चित्र-5. राजपूत दुर्ग में स्थित जौहर कुण्ड

उसे वीरगति को प्राप्त हो जाना चाहिए। इसके बाद उसने क्रोध में आते हुए कहा, "मेरी चिता की तैयारी करो। मैं अग्नि-समाधि ले लूंगी। मेरे साथ बहुत बड़ा धोखा हुआ है। मेरा पति मर चुका है। इसके अतिरिक्त और कुछ हो ही नहीं सकता।" इतना कहकर वह गहरे शोक में चली गई अगले 8-9 दिनों तक इसी स्थिति में रही तथा उसने अपने पति को देखने अथवा मिलने से इंकार कर दिया। इतने में रानी की मां वहां आ गई और उसने अपनी बेटी के क्रोध को ये कहकर शांत करवाया कि जैसे ही राजा अपनी युद्ध की थकान को दूर कर लेगा, वह एक नई सेना लेकर औरंगज़ेब पर आक्रमण करके अपना सम्मान प्राप्त कर लेगा। इस घटना से आप समझ सकते हैं कि राजपूत महिलाओं का चरित्र और दृढ़ता कैसी थी?

विशिष्ट शब्दावली

जौहर: जौहर राजपूतों में प्रचलित एक प्रथा थी, जिसमें अपने राज्य या गढ़ की पराजय तथा शत्रु की विजय निश्चित होने पर अपमान से बचने के लिए राजपूत स्त्रियों द्वारा एक विशाल चिता में सामूहिक रूप से आत्मदाह कर लिया जाता था।

अंग्रेज़ इतिहासकार कर्नल टॉड राजपूत महिलाओं के विषय में लिखतें हैं, राजपूत महिलाएं बहुत ही चरित्रवान, परिवार के लिए समर्पित, स्नेह करने वाली, परिवार का संचालन करने वाली, पति के साथ युद्ध और खेलों में भागीदारी करने वाली, कायरों से घृणा करने वाली और सामाजिक तथा घरेलू कार्यों में प्रभावशाली भूमिका निभाने वाली हैं।

तुर्कों और मुगलों के युद्ध करने के नियम राजपूतों के नियमों के विपरीत थे। जहां राजपूत यह मानते थे कि निहत्थों, साधारण नागरिकों, वृद्धों और महिलाओं पर किसी प्रकार का अत्याचार नहीं होना चाहिए। इसके विपरीत अरब तुर्क और मुगल महिलाओं को पकड़कर उनके साथ अत्यंत बुरा व्यवहार करते थे। जब कभी ऐसी स्थिति आ जाती थी कि राजपूतों के दुर्ग को घेर लिया जाता था और बचने की कोई आशा नहीं होती थी। तब सभी पुरुष अंतिम युद्ध के लिए निकल पड़ते थे और पीछे बच गई महिलाएं अपना सम्मान बचाने के लिए सामूहिक रूप से 'जौहर' कर लेती थी। इस प्रकार के युद्ध को साका कहते थे। इसका अर्थ था विजय अथवा मृत्यु।

©BSEH Bhiwani
Not to be republished

गतिविधि : भारत की वीरांगनाओं की सूची तैयार कर उनके बारे में सूचना एकत्र कीजिये।

जाट

जाट मध्य काल में दिल्ली के आस-पास, मथुरा, आगरा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, राजस्थान, हरियाणा एवं पंजाब में निवास करते थे। ये मुख्यत: कृषि करते थे तथा बलिष्ठ शरीर एवं शौर्य से परिपूर्ण लोग थे। इन्होंने महमूद गजनवी एवं उसके उत्तराधिकारियों से लोहा लिया। जाट स्वभाव से स्वतंत्रता प्रिय लोग थे। इनके गांव स्वतंत्र गणतंत्र की भांति कार्य करते थे। सल्तनतकालीन शासक एवं अधिकतर मुगल शासक भी इनके स्वतंत्रता प्रिय एवं न्याय प्रिय स्वभाव से अवगत थे। इसलिए उन्होंने जाटों के गांवों में हस्तक्षेप नहीं किया था। उनकी स्वतंत्रता, को बनाए रखा। मुगल सम्राट अकबर ने दो आदेश जारी करके जाटों की आंतरिक स्वतंत्रता जाट पंचायतों (खापों) को मान्यता एवं जाटों को अपने धार्मिक रीति-रिवाजों को अपनी प्राचीन मान्यताओं के अनुसार करने की पूर्ण स्वतंत्रता दी थी। जिससे जाटों में शासन के प्रति विश्वास उत्पन्न हुआ। अकबर की शांति एवं सौहार्द्र की इस नीति को जहांगीर व शाहजहां ने जारी रखा लेकिन औरंगज़ेब की धार्मिक कट्टरता की नीति, तानाशाही शासन एवं शोषणकारी नीतियों ने जाट कृषकों में बेचैनी व असंतोष को उत्पन्न कर दिया। शीघ्र ही वे गोकुल नामक जाट जमींदार के नेतृत्व में एकजुट होने लगे। मथुरा, आगरा के इन जाटों ने गोकुल के नेतृत्व में औरंगज़ेब के अत्याचारों के विरुद्ध 1669 ई. में भयंकर विद्रोह किया। विद्रोह को दबा दिया गया तथा गोकुल शहीद हुआ लेकिन इस विद्रोह तथा मुगलों के अत्याचारों ने जाटों को लगातार संघर्ष के लिए प्रेरित किया। गोकुल के बाद बृजराज, राजा राम, चूड़ामन, बदन सिंह व सूरजमल के नेतृत्व में यह संघर्ष जारी रहा। इस संघर्ष ने अन्य संघर्षों को जन्म दिया एवं मुगलों के पतन में मुख्य भूमिका निभाई। जाटों के संघर्ष का वर्णन निम्न अनुसार किया जा सकता है।

गोकुल : गोकुल को जाटों का अग्रणी राजनीतिक नेता माना जाता है। वह सिनसीनी गांव के जमींदार रोड़ियां सिंह का पुत्र था। उसका वास्तविक नाम ओला था तथा कुछ स्रोतों में उसे कान्हड़देव भी कहा गया है । वह एक वीर पुरुष था। उसमें अदम्य साहस, वीरता एवं संगठन क्षमता के अदभुत् गुण थे। जिनके बल पर उसने कृषि करने वाले साधारण कृषकों को सैनिक के रूप से संगठित करके विशाल एवं शक्तिशाली मुगल साम्राज्य के विरुद्ध खड़ा कर दिया। गोकुल ने मथुरा व आगरा के कृषकों में व्याप्त असंतोष को विद्रोह में बदल दिया।

1669 ई. में गोकुल के योग्य नेतृत्व में विद्रोह भड़क उठा। यद्यपि यह विद्रोह गोकुल के नेतृत्व में अधिकतर जाटों द्वारा हुआ लेकिन इसमें अन्य कृषक जातियां, जैसे मेव, मीणा, अहीर, गुर्जर, नरूका, पंवार एवं अन्य भी शामिल थे। सारे विद्रोही 1669 ई. में गोकुल के नेतृत्व में मथुरा से छह किलोमीटर दूर सहोरा गांव में इकट्ठा हुए तथा उन्होंने मुगलों को कर देने से इन्कार कर दिया। मथुरा के फौजदार अब्दुल नबी ने सैनिक टुकड़ी के साथ विद्रोहियों पर आक्रमण कर दिया। इस लड़ाई में विद्रोहियों ने अब्दुल नबी को मारकर विजय प्राप्त की। विजय से उत्साहित होकर गोकुल ने सदाबाद के परगने पर अधिकार कर लिया। शीघ्र ही विद्रोह

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

आगरा तक फैल गया। औरंगज़ेब ने सैफ शिकन खान को मथुरा का नया फौजदार नियुक्त किया लेकिन विद्रोह फैलता गया। मुगल सम्राट ने कूटनीति का सहारा लेते हुए गोकुल को माफी का प्रस्ताव भेजा जिसे गोकुल ने नकार दिया। विद्रोह के विस्तार को देखते हुए औरंगज़ेब ने स्वयं शाही सेना के साथ प्रस्थान किया। मुगल सम्राट ने रेवारा, चन्द्राखा, सरखुद में विद्रोह को दबाने के लिए हसन अलीखान को भेजा। विद्रोहियों ने वीरता से सामना किया। तीन सौ विद्रोही मारे गए और दो सौ पचास महिला-पुरुष विद्रोहियों को बंदी बनाकर हसन अली खान औरंगज़ेब के पास पहुंचा। औरंगज़ेब प्रसन्न हुआ तथा उसने 'सैफ शिकन खान' की जगह हसन अली खान को मथुरा का फौजदार नियुक्त किया। हसन अलीखान पांच हजार विशेष सिपाहियों की सेना तथा पच्चीस तोपों के साथ विद्रोहियों से निपटने चला। दूसरी ओर गोकुल के नेतृत्व में दो हजार किसान (जाट व अन्य) इकट्ठा हुए। एक तरफ अनुशासित, प्रशिक्षित तथा अस्त्र-शास्त्रों से सुसज्जित सेना थी जबकि दूसरी ओर किसानों की अप्रशिक्षित सेना थी। गोकुल के नेतृत्व में जाट वीरता से लड़े लेकिन तोपखाने के कारण तीन दिन बाद मुगलों को सफलता मिली। इस युद्ध में चार हजार मुगल सैनिक मारे गए और गोकुल के समर्थक पांच हजार किसान भी शहीद हुए। गोकुल को उसके ताऊ उदय सिंह सिंघी एवं सात हजार किसानों सहित मुगल सेनापति ने बंदी बना लिया।

किसानों के प्रतिरोध के कारण : औरंगज़ेब की धार्मिक कट्टरता एवं प्रशासनिक नीतियों से किसानों में रोष उत्पन्न हुआ। औरंगज़ेब के निम्नलिखित कार्यों, नीतियों और आदेशों ने किसानों को मुगलों के विरुद्ध कर दिया :

- विभिन्न आदेशों द्वारा पुराने मन्दिरों का जीर्णोद्धार करने व नए मन्दिरों के निर्माण पर रोक लगा दी। कई मन्दिरों को तोड़ दिया।
- 1665 ई. सार्वजनिक रूप से दिवाली और होली मनाने पर प्रतिबंध।
- 1668 ई. में हिन्दुओं के मेलों और उत्सवों पर रोक लगा दी।
- तीर्थ-यात्रा कर पुनः लगा दिया।
- कृषकों का शोषण।
- 1665 ई. में हिन्दू व्यापारियों पर पांच तथा मुस्लिम व्यापारियों पर ढाई प्रतिशत कर लगाया। 1667 ई. में मुस्लिम व्यापारियों से कर लेना बंद कर दिया।
- हिन्दुओं पर जजिया कर पुनः लगाना।

चित्र-6. मथुरा स्थित श्रीकृष्ण जन्मभूमि के एक भाग को तोड़कर औरंगजेब द्वारा बनाई ईदगाह

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

गतिविधि : खेतिहर जाटों को सैनिक के रूप में स्थापित करने में गोकुल का क्या योगदान रहा? इस पर अपने विचार व्यक्त कीजिये।

गोकुल की शहीदी : जाटों ने मुगलों से संघर्ष में अपनी वीरता एवं शौर्य का परिचय दिया लेकिन शक्तिशाली मुगल सेना के सामने सीधे सरल किसान विवश थे। गोकुल को बंदी बनाकर आगरा लाया गया औरंगज़ेब स्वयं आगरा पहुंचा तथा गोकुल को इस्लाम स्वीकार करने तथा क्षमा मांगने का प्रस्ताव दिया लेकिन गोकुल के इन्कार करने पर उसके शरीर के टुकड़े-टुकड़े करने का आदेश दिया। गोकुल ने धर्मत्याग की अपेक्षा शहादत को स्वीकार किया। गोकुल की हत्या के बाद उनके परिवार की स्त्रियों को मुगल अधिकारियों में बांट दिया गया। यद्यपि गोकुल द्वारा किया गया विद्रोह असफल रहा तथा इसका दमन कर दिया गया लेकिन विद्रोह का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। कृषक जातियाँ मुगलों का विरोध करने लगी तथा सतनामी विद्रोह को भी इसी से प्रेरणा मिली। जाट व अन्य कृषक जातियां पुनः संगठित हुई तथा उन्होंने इससे प्रेरणा के साथ-साथ सीख भी ली कि मुगलों से आमने-सामने की लड़ाई में विजय हासिल नहीं हो सकती इसलिए उन्होंने घने जंगलों में गढ़ बनाकर सैनिक प्रशिक्षण लेना आरम्भ किया तथा पुनः मुगलों के सामने आ डटे। पंजाब के सिक्खों को भी इस विद्रोह ने प्रेरित किया।

बृजराज का विरोध : औरंगज़ेब के हाथों गोकुल की दर्दनाक मृत्यु से जाटों में आक्रोश फैल गया। उन्होंने आगरा-मथुरा के आस-पास सारी सेनाओं व सैनिक चौकियों को लूटना प्रारम्भ कर दिया। सिनसिनी गांव के बृजराज, उसके भाई भज्जा सिंह एवं भज्जा सिंह के पुत्र राजाराम के नेतृत्व में वे पुनः एकजुट होने लगे। 1680 -1682 ई. के बीच जाट विद्रोहियों का नेतृत्व बृजराज ने किया। भू-राजस्व देने से मना करने पर औरंगज़ेब ने मुल्तफ़त को आगरा का फौजदार बनाकर जाटों का दमन करने भेजा लेकिन उसे जाटों के सामने घुटने टेकने पड़े। 1682 ई. में बृजराज को घेर लिया गया। बृजराज शहीद हुआ तथा जाटों का नेतृत्व राजा राम के हाथों में आ गया।

चित्र-7. राजाराम

राजाराम का विरोध : बृजराज की मृत्यु के बाद जाटों का नेता बृजराज के भाई भज्जा सिंह का बेटा राजाराम बना। वह एक वीर योद्धा था। उसने इतिहास से शिक्षा ली तथा मुगलों से सीधी टक्कर लेने की अपेक्षा छापामार (गोरिल्ला) युद्ध लड़ने का निर्णय किया। औरंगज़ेब इस समय दक्षिण में था तथा मुगल

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

अधिकारी कमजोर थे। इसलिए राजाराम ने अवसर का लाभ उठाया। सर्वप्रथम राजाराम ने सभी क्षेत्रों के वीरों को एकजुट किया। तत्पश्चात् उनका सैनिक प्रशिक्षण करवाने के उद्देश्य से घने जंगलों में गढ़ बनाए। राजाराम के नेतृत्व में जाटों ने आगरा–मथुरा के क्षेत्र में सरकारी माल को लूटना शुरू कर दिया। आगरा का सूबेदार तो डरकर किले में बंद हो गया। 1687 ई. में औरंगज़ेब ने अपने पोते बेदारबख्त को जाटों का दमन करने के लिए भेजा। उसके पहुंचने से पहले राजाराम ने 1688 ई. में सिकंदरा में अकबर के मकबरे पर आक्रमण करके तथा कब्र खुदवाकर अकबर की हड्डियाँ जला दी एवं मुख्य द्वार को तोड़ दिया। छत पर लगी बहुमूल्य धातुओं को उतार लिया। इस प्रकार राजाराम ने गोकुल की मौत का बदला लिया। बेदारबख्त अप्रभावी सिद्ध हुआ तो औरंगज़ेब ने आमेर के बिसन सिंह को भेजा। दोनों में युद्ध हुआ राजाराम वीरगति को प्राप्त हुआ लेकिन अभी भी जाटों ने मुगलों का विरोध जारी रखा।

गतिविधि : अकबर के मकबरे को क्षतिग्रस्त करने और उसकी अस्थियां जलाने के पीछे राजाराम का क्या उद्देश्य रहा होगा?

महाराजा सूरजमल द्वारा बनवाया गया लौहगढ़ का दुर्ग एक अजेय दुर्ग है। इसे अजयगढ़ के नाम से भी जाना जाता है। मिट्टी की प्राचीर होने के कारण इसे मिट्टी का दुर्ग भी कहा जाता है। इसके उत्तरी द्वार का दरवाजा अष्टधातु का बना है जिसे जवाहर सिंह दिल्ली विजय पर लाल किले से ले कर आये थे।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

चित्र-8. जाट राजा सूरजमल द्वारा निर्मित लौहगढ़ दुर्ग का दृश्य

चित्र-9. लौहगढ़ दुर्ग का बाहरी दृश्य

जाट राज्य की स्थापना

राजाराम की मृत्यु के बाद जाट चूड़ामन के नेतृत्व में एकत्र हुये। 1707 ई. में औरंगजेब की मृत्यु होने के बाद मुगल कमजोर हुये। इसका लाभ उठाकर चूड़ामन ने अपनी शक्ति में वृद्धि की। वह इस समय जाटों का सर्वमान्य नेता बन गया और जाटों को सैनिक एवं राजनैतिक दृष्टि से संगठित करके सिनसिनी में जाट राज्य की नींव रखी। चूड़ामन के बाद बदनसिंह ने अपनी योग्यता से जाट राज्य का विस्तार किया। बदनसिंह के पुत्र सूरजमल ने अनेक सैनिक युद्धों में विजय प्राप्त करके भरतपुर के जाट राज्य की स्थापना की। सही अर्थों में वह भरतपुर के जाट राज्य का संस्थापक था और तत्कालीन भारत के महान राजाओं में से एक था। उसे 'जाट जाति का प्लेटो' भी कहा जाता है। मुगलों के धार्मिक अत्याचारों के विरुद्ध जाटों का उदय हुआ था तथा जाटों ने अपने परम्परागत रीति-रिवाजों एवं स्वतंत्रता में मुगलों के हस्तक्षेप को कभी स्वीकार नहीं किया। पूरे ब्रज प्रदेश पर अधिकार स्थापित करने के बाद सूरजमल ने 12 जून, 1761 ई. को मुगलों की द्वितीय शाही राजधानी आगरा पर अधिकार कर लिया था।

सतनामी

सतनामी मध्ययुग के भक्ति आंदोलन की ही एक उपज थी। सतनामी सम्प्रदाय की स्थापना 1543 ई. में नारनौल क्षेत्र के बिसेर गांव में बीरभान नामक एक भक्त ने 'साध' के रूप में की थी। यह रैदासी सम्प्रदाय की ही एक शाखा थी जो रैदास नामक प्रसिद्ध भक्त संत के बाद शुरू हुई रैदास वैष्णव सन्त रामानन्द के प्रमुख शिष्यों में से एक थे। कहा जाता है कि बीरभान उद्धव दास नामक रैदास के शिष्य से प्रभावित थे। साध एकेश्वरवादी थे। ये ईश्वर के सच्चे नाम अर्थात् सतनाम में विश्वास करते थे। इसलिए ये सतनामी कहलाते थे। ये भौतिक जगत से आंशिक संन्यासी का जीवन जीते थे। इनमें नारनौल के आस-पास के अहीर, सुनार, खाती, दलित आदि छोटे-छोटे व्यवसाय करने वाली व कृषि करने वाली जातियों के लोग शामिल थे। वे अपने सिर और भौहों समेत चेहरा मुंडवा लेते थे। इसलिए उन्हें 'मुंडिया साधु' भी कहा जाता था। खाफी खां नामक समकालीन इतिहासकार ने अपनी पुस्तक 'मुंतखब-उल-लुबाब' में इनके बारे में लिखा है, 'यद्यपि ये लोग फकीरों की तरह रहते हैं किन्तु इनमें से अधिकतर या तो खेती-बाड़ी करते हैं या छोटे-मोटे व्यवसाय। अपने संगठन के सिंद्धातों के अनुसार ये लोग सच्चे नाम के साथ जीना चाहते हैं और कभी कोई बेईमानी व अन्याय से धन नहीं कमाते। यदि कोई इन पर अत्याचार करता था तो ये इसे बर्दाश्त भी नहीं करते थे। इनमें से अधिकतर लोग तो हमेशा हथियारों से सुसज्जित रहते थे।' मेवात और नारनौल क्षेत्र में सतनामियों का निवास था। इनकी कुल संख्या उस समय लगभग चार से पांच हजार के आस-पास थी। अकबर और जहांगीर के साथ सतनामी लोग अपने-अपने गांवों में शांति से कृषि करते हुए जीवनयापन कर रहे थे।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

औरंगज़ेब के धार्मिक कट्टरता के समय में उसके राजस्व अधिकारियों के अन्याय के विरुद्ध 1672 ई. में नारनौल क्षेत्र के गांवों में सतनामियों ने विद्रोह कर दिया। एक दिन सतनामी किसान से सरकारी प्यादे का झगड़ा हो गया। प्यादे ने किसान के सिर पर लाठी दे मारी। शोर मचाने पर अन्य सतनामी इकट्ठे हो गए तथा सबने मिलकर प्यादे को बुरी तरह पीट दिया। जब नारनौल के शिकदार को इस घटना की जानकारी मिली तो उसने सतनामियों को सजा देने के लिए एक सैनिक टुकड़ी भेजी किन्तु भारी संख्या में इकट्ठा हुए सतनामियों ने इस सैनिक टुकड़ी को बुरी तरह हराकर उसके हथियार छीन लिए शाही सेना की दण्डात्मक कार्यवाही से विद्रोह भड़क उठा।

सतनामियों ने औरंगज़ेब के विरुद्ध धर्म-युद्ध का बिगुल बजा दिया था तथा वे सिर पर कफ़न बांधकर युद्ध में कूद पड़े। सतनामियों का उत्साह बहुत अधिक बढ़ा हुआ था। उन्होंने फौजदार ताहिर खान व उसकी सेना को बुरी तरह से पराजित किया। नारनौल नगर पर सतनामियों का अधिकार हो गया। सतनामियों द्वारा शाही दफ्तरों व शाही खजाने को लूट लिया गया। सतनामियों ने अपनी सरकार बनाकर नारनौल क्षेत्र की व्यवस्था अपने हाथों में ले ली। स्थान-स्थान पर चौकियां बनाकर किसानों से भू-राजस्व इकट्ठा किया तथा मुगल शासन व सरकार के सभी प्रतीक चिह्न मिटा दिए गए।

औरंगज़ेब की घबराहट तथा विशाल सेना का कूच : सतनामियों की सफलता की सूचना जब मुगल सम्राट औरंगज़ेब तक पहुंची तो उसको चिंता होने लगी। मुगल दरबार में घबराहट व बेचैनी बढ़ने लगी। कई मुस्लिम और राजपूत सेनापतियों ने सतनामियों से लड़ने से मना कर दिया। अफवाहों का बाजार गर्म होने लगा कि सतनामियों पर मुगल अस्त्र-शस्त्रों का कोई प्रभाव नहीं होता। 15 मार्च 1672 को औरंगज़ेब ने एक विशाल मुगल सेना, मुगल शहजादा मोहम्मद अकबर तथा सबसे योग्य सेना नायकों के साथ नारनौल भेजी लेकिन सतनामियों के मंत्रों तथा बहादुरी की बातें सुनकर शाही सेना के हाथ पैर फूल गए। औरंगज़ेब ने स्वयं जादू टोने व अपने हाथ से आयतें लिखकर शाही झण्डों में सिलवाई ताकि शाही सेना का आत्म विश्वास वापस लौटे और युद्ध जीता जा सके।

सतनामियों की शहादत : जब शाही सेना नारनौल पहुंची तो सतनामी भूखे शेर की तरह उन पर टूट पड़े। एक ओर विशाल प्रशिक्षित अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित मुगल सेना तो दूसरी ओर पांच हजार की संख्या में सिर मुण्डवाए सतनामी। उनके बीच भयानक युद्ध हुआ। सतनामियों की वीरता, शौर्य एवं रण कौशल देख कर बड़े-बड़े मुगल सैनिकों के पसीने छूट गए। पीछे न हटने की तो मानो सतनामी सौगंध खाकर आए थे। सैंकड़ों सतनामी कटकर ढेर हुए लेकिन मुगल सेना आगे न बढ़ सकी। अंत में अधिक संख्या, अच्छे हथियारों से सुसज्जित, अनुशासित ढंग से लड़ने वाली मुगल सेना की विजय हुईं। लगभग पांच हजार सतनामियों की शहादत

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

हुई सतनामी विद्रोह को औरंगज़ेब ने दबा दिया तथा उसके बाद उसने हरियाणा के क्षेत्र में धार्मिक स्थलों का विध्वंस करके अपनी भड़ास निकालने का प्रयास किया। फिर भी इस विद्रोह ने मुगल साम्राज्य की जड़ें हिला दी। सतनामियों के बाद राजपूतों, जाटों, बुंदेलों एवं सिक्खों ने भी एक के बाद एक विद्रोह करके मुगल साम्राज्य को कमजोर करके उसका पतन निश्चित कर दिया।

चित्र-10. सतनामियों और मुगल सेना के बीच संघर्ष का एक दृश्य

गतिविधि : सतनामियों द्वारा मुगल साम्राज्य को दी गई चुनौती के महत्व पर एक अनुच्छेद लिखिए।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

आओ याद करें :

1. मारवाड़ के शासक राजा जसवंत सिंह की 1678 ई. में जमरूद अफगानिस्तान में मृत्यु हुई।
2. कछवाहा शासक के सवाई जयसिंह ने जयपुर नगर बसाया इसकी रूपरेखा एक बंगाली विद्वान विद्याधार भट्टाचार्य ने तैयार की थी।
3. राजा जयसिंह ने दिल्ली, जयपुर, काशी, मथुरा एवं उज्जैन में जंतर मंतर बनवाएं।
4. गोकुल के नेतृत्व में जाटों ने 1669 ई. में आगरा एवं मथुरा में औरंगजेब के विरुद्ध प्रतिरोध किया।
5. गोकुल सिंह सिनसीनी गांव के ज़मीदार रोडिया सिंह का पुत्र था।
6. जाट राजा राजाराम ने 1688 ई. में सिकंदरा में अकबर के मकबरे पर आक्रमण किया और अकबर की कब्र खुदवा कर उसकी हड्डियां जला दी।
7. सतनामी सम्प्रदाय की स्थापना 1543 ई. नारनौल में संत वीरभान ने की।
8. मुगल सम्राट औरंगजेब के समय में 1672 ई. में नारनौल के सतनामियों ने विद्रोह किया।

रिक्त स्थान भरो :

1. सवाई राजा जयसिंह ने .... नगर को अपनी राजधानी बनाया गया।
2. राजा जसवंत सिंह के पुत्र .... को दुर्गादास राठौर ने संरक्षण दिया।
3. जाटों ने .... के नेतृत्व में 1669 ई. में मुगलों का विरोध किया।
4. वीरभान द्वारा नारनौल में .... सम्प्रदाय का प्रचार प्रसार किया गया।

उचित मिलान कीजिए :

1.	सवाई राजा जय सिंह	सतनामी सम्प्रदाय की स्थापना
2.	महाराजा सूरजमल	स्वामिनिष्ठा और वीरता का अनुपम उदाहरण
3.	संत वीरभान	अजेय लौहगढ़ दुर्ग का निर्माता
4.	दुर्गादास राठौर	वेधशालाओं का निर्माता

आओ विचार करें :

1. राजपूत स्त्रियों के चारित्रिक गुण क्या थे?
2. राजपूत शासकों की वीरता से मुगल शासक सदा ही प्रभावित क्यों रहे?
3. स्थानीय शासकों का रणभूमि के अतिरिक्त विज्ञान व स्थापत्य जैसे क्षेत्रों में क्या योगदान रहा?
4. कृषि और आध्यात्म से जुड़े लोग कैसे कुशल योद्धा बने?
5. विशाल व प्रशिक्षित सेना का मुकाबला करने में गुरिल्ला युद्ध प्रणाली की क्या भूमिका हो सकती है?
6. जाटों द्वारा मुगलों के प्रतिरोध के क्या कारण थे?

आओ करके देखें :

1. सत्रहवीं शताब्दी के भारतीय समाज में राजपूतों की स्थिति का अवलोकन कीजिये?
2. औरंगज़ेब की विशाल सेना से लोहा लेने वाले जाट सामान्य कृषक होने के बावजूद एक उल्लेखनीय राजनीतिक शक्ति बनकर उभरे। इसके कारणों पर चर्चा कीजिये।
3. सतनामी सम्प्रदाय के वर्तमान स्वरूप पर चर्चा कीजिये।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

अध्याय 6

अठारहवीं सदी का भारत

अठारहवीं शताब्दी के दौरान भारत आर्थिक गतिविधियों का एक ऐसा केन्द्र बन गया था, जिससे हर विदेशी राष्ट्र व्यापार कर उस पर अपना आधिपत्य जमाने को आतुर था। भारत औद्योगिक माल के उत्पादन में एक अग्रणी राष्ट्र था। यहाँ का उच्च कोटि का सूती एवं रेशमी कपड़ा, मसाले, नील, शक्कर, औषधियाँ एवं बहुमूल्य रत्न किसी भी राष्ट्र को लालायित करने के लिए काफी थे। अठारहवीं शताब्दी को कुछ विदेशी इतिहासकार 'अन्धकार काल' का नाम देते हैं परन्तु यह ठीक नहीं है क्योंकि अठारहवीं शताब्दी में भारत में विदेशी कम्पनियाँ अपना व्यापार करने के लिए आ गई थीं तथा उन्होंने भारत में विशेषकर बंगाल व तटीय क्षेत्र में में व्यापार आरम्भ किया, जिसके कारण अठारहवीं शताब्दी को भारत की आर्थिक उन्नति का काल भी कहा जाता है।

क्या आप जानते हैं?

1674 ई. में छत्रपति शिवाजी ने मराठा साम्राज्य की नींव रखी और रायगढ़ में उनका राज्याभिषेक हुआ।

अध्ययन के मुख्य केन्द्र बिन्दु :

1) 18वीं शताब्दी के भारत की स्थिति
2) मराठा साम्राज्य का उत्कर्ष
3) पानीपत का तीसरा युद्ध
4) प्रमुख राज्य
5) विदेशी शक्तियों के आगमन के कारण

अठारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में भारत में मुगल साम्राज्य बिखर चुका था। मुगल शासकों ने जिस कूटनीति का सहारा लेकर जो साम्राज्य संगठित किया था, उसका शाहजहाँ और औरंगजेब की कट्टर धार्मिक नीति एवं गैर-मुस्लिमों पर अत्याचार के कारण पतन शुरू हुआ। परिणामस्वरूप मुगल-साम्राज्य के अवशेषों पर अनेक स्वतंत्र राज्यों का निर्माण शुरू हुआ। ये राज्य थे - बंगाल, अवध, हैदराबाद, कर्नाटक, केरल, रूहेलखण्ड, बुंदेलखण्ड, राजपूताना, मराठा एवं पंजाब में सिक्ख आदि। इन राज्यों की जानकारी इस प्रकार से है :

1. मराठा-शक्ति का उत्कर्ष : औरंगज़ेब के शासनकाल में छत्रपति शिवाजी ने स्वतंत्र राज्य की स्थापना की। 1689 ई. में शम्भाजी को अपने परिवार के साथ मुगल सेनाओं द्वारा पकड़ा गया। शम्भाजी का कत्ल कर दिया गया और उसके पुत्र शाहू को बन्दी बना लिया गया। शम्भाजी की मृत्यु के पश्चात् 'राजाराम' (1689-1700 ई.) मराठों का राजा बना और उसके नेतृत्व में मराठों ने अपना संघर्ष जारी रखा। राजाराम की 1700 ई. में मृत्यु हो गई।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

चित्र-1 छत्रपति शिवाजी का दरबार

राजाराम की मृत्यु के उपरान्त उसकी विधवा पत्नी ताराबाई ने मुगलों के विरुद्ध शक्तिशाली संघर्ष जारी रखा। उसने अपने चार वर्षीय पुत्र को गद्दी पर बिठाया, जो शिवाजी द्वितीय के नाम से सिंहासन पर बैठा। मराठों से संघर्ष करते हुए 2 मार्च 1707 ई. को औरंगज़ेब की मृत्यु हो गयी। उस समय शाहू औरंगज़ेब के पुत्र आज़मशाह की कैद में था। आज़मशाह ने मराठों में फूट डलवाने के लिए शम्भाजी के पुत्र शाहू को जेल से मुक्त कर दिया। अनेक मराठा सामन्तों ने महाराष्ट्र पहुँचने पर शाहू का स्वागत किया परन्तु 'ताराबाई' ने शाहू से किसी भी प्रकार का समझौता करने से इन्कार कर दिया। मराठे दो भागों में बँट गये, प्रमुख मराठा सामन्त शाहू के खेमे में आने लगे। 01 जनवरी, 1707 ई. को शाहू ने सतारा पर अधिकार करके 12 जनवरी, 1708 ई. को सतारा में अपना राज्याभिषेक कराया। शाहू ने बालाजी विश्वनाथ को अपना पेशवा नियुक्त किया। शाहू के शासन-काल में मराठा शक्ति का तेजी से विकास हुआ। मराठा प्रभुत्व न केवल दक्षिण भारत बल्कि उत्तर भारत में भी स्थापित हुआ। 15 दिसम्बर, 1749 ई. को छत्रपति शाहूजी का देहांत हो गया।

शाहू के शासनकाल में पेशवाओं का उत्कर्ष हुआ, जिन्होंने महाराष्ट्र को न केवल राजनीतिक स्थायित्व और शांति प्रदान की बल्कि मराठा-राज्य का भी तेजी से विस्तार किया। मराठा शक्ति न केवल दक्षिण भारत में श्रेष्ठ बनी बल्कि उत्तर भारत में भी मराठा शक्ति का लोहा माना जाने लगा। बालाजी विश्वनाथ एवं बाजीराव महान पेशवा थे। बालाजी ने मराठा-संघ की नींव डाली। शिवाजी के शासन काल में प्रशासन कार्य अष्ट प्रधान करते थे और उन्हें राजकोष से नकद वेतन मिलता था। शिवाजी ने न तो जागीर-प्रथा प्रारम्भ की और न ही पदों को वंशानुगत किया। शिवाजी की मृत्यु के बाद यह व्यवस्था समाप्त हो गई और उसके स्थान पर जागीर प्रथा प्रारम्भ हुई। 1719 ई. की संधि के अनुसार मराठों को छह मुगल सूबों से चौथ और सरदेशमुखी वसूल करने का अधिकार मिला था, लेकिन बालाजी ने उसे भी विभिन्न मराठा सरदारों में जागीर के रूप में बाँट दिया। ये सामन्त अपने क्षेत्रों से चौथ और सरदेशमुखी वसूल करते थे।

आओ विचार करें

पेशवा : इन्हें प्रधानमंत्री भी कहा जाता था। ये शासन की कार्यकुशलता का ध्यान रखते थे। प्रमुख पेशवा इस प्रकार है :

1. बालाजी विश्वनाथ (1713- 1720 ई.)
2. बाजीराव प्रथम (1720-1740 ई.)
3. बालाजी बाजीराव (1740-1761 ई.)
4. माधवराव प्रथम (1761-1772 ई.)

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

दिल्ली का मुगल दरबार षड्यंत्रों का केन्द्र था। इन षड्यंत्रों के कारण मराठों को दिल्ली दरबार में हस्तक्षेप करने का अवसर प्राप्त हुआ। 1752 ई. में सम्राट और पेशवा के मध्य एक सन्धि हुई जिसके अनुसार सम्राट ने मराठों को मुगलों के अधीन क्षेत्र जैसे पंजाब, राजपूताना, सिंध मुल्तान आदि से चौथ लेने का अधिकार दे दिया तथा इसके बदले में मराठों ने मुगलों की आंतरिक और बाह्य सुरक्षा का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लिया। दिल्ली-दरबार में हिन्दुस्तानी अमीर और तूरानी अमीरों के दो दल थे। ये दोनों दल एक-दूसरे के विरोधी थे। मराठों ने हिन्दुस्तानी अमीर वर्ग का समर्थन किया। मराठे इस वर्ग के साथ मिलकर सम्राटों को गद्दी पर बैठाने और उतारने लगे। तूरानी दल ने विदेशी सहायता प्राप्त करने के लिए अहमदशाह अब्दाली को भारत पर आक्रमण करने के लिए प्रेरित किया।

पानीपत का तीसरा युद्ध (1761 ई.) : पेशवा बालाजी बाजीराव ने अपने चचेरे भाई सदाशिवराव भाऊ के नेतृत्व में अहमदशाह अब्दाली के विरुद्ध एक विशाल सेना भेजी। 14 जनवरी 1761 ई. को मराठों और अब्दाली के बीच पानीपत का इतिहास प्रसिद्ध युद्ध हुआ। इस युद्ध में मराठे पराजित हुए और अनेक मराठा सरदार युद्ध क्षेत्र में मारे गये। इस युद्ध में मराठों की अपार जन-हानि हुई। पेशवा की शक्ति कमजोर हो गई और मराठा साम्राज्य उत्तर भारत से पीछे हट गया।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

2. बंगाल : 1717 ई. में मुर्शिद कुली खाँ की बंगाल के मुगल सूबेदार के रूप में नियुक्ति हुई। उन्होंने मुगल साम्राज्य की पतनावस्था से लाभ उठाकर स्वतंत्र शासक के रूप में कार्य प्रारम्भ कर दिया। लेकिन वह मुगल-सम्राट के सेवक के रूप में व्यवहार करते हुए उसे वार्षिक भेंट भी भेजता रहा। उसने बंगाल में शान्ति स्थापित की और विद्रोही जमींदारों पर नियंत्रण रखा। मुर्शिद कुली खाँ की 1727 ई. में मृत्यु हो गई। उसके बाद उसका दामाद शुजाउद्दीन बंगाल का शासक बना। 1739 ई. में उसका अयोग्य पुत्र सरफराज खाँ बंगाल का शासक बना, जिसे हटाकर अलीवर्दी खाँ ने बंगाल की नवाबी प्राप्त की और 1740 ई. में स्वयं को बंगाल का स्वतंत्र शासक घोषित किया। उसके शासन काल में 'यूरोपीय कम्पनियों' ने बंगाल में अपने व्यापार का प्रसार किया। उसने अपने शासन काल में अंग्रेज़ों और फ्रांसीसियों को अपने नियंत्रण में रखा और अंग्रेज़ों को कलकत्ता और फ्रांसीसियों को चन्द्रनगर में अपनी कोठियों की किलेबन्दी करने की आज्ञा नहीं दी। उसकी मृत्यु के उपरान्त सिराजुद्दौला बंगाल का नवाब बना। अलीवर्दी खाँ ने अपने उत्तराधिकारी सिराजुद्दौला को अंग्रेज़ों के प्रति सावधान

चित्र-2. पानीपत के तृतीय युद्ध का दृश्य

रहने का परामर्श भी दिया। सिराजुद्दौला अनुभवहीन था। उसका अंग्रेज़ों से संघर्ष हो गया। नवाब के द्वारा अंग्रेज़ों की किलेबंदी करने पर नवाब ने अंग्रेज़ों के कासिम बाजार की फैक्टरी पर अधिकार कर लिया व अंग्रेज़ों को आत्मसमर्पण के लिए मजबूर किया। षड्यंत्रों के द्वारा अंग्रेज़ों ने नवाब को अपदस्थ करने की योजना बनाई। इस योजना में नवाब के सेनापति एवं बंगाल के कुछ प्रमुख व्यक्तियों को लालच देकर खरीद लिया गया जिसके कारण 1757 ई. में प्लासी के युद्ध में सिराजुद्दौला की पराजय हुई। उसे अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा और मीर जाफर बंगाल का नवाब हो गया। कुछ वर्षों के बाद मीर जाफर को हटाकर मीर कासिम को नवाब बनाया गया। ऐसी स्थिति में इनसे अंग्रेजों ने खूब धन लूटा। जब मीर कासिम बंगाल का नवाब बना तो वह बंगाल की स्थिति को सुधारना चाहता था लेकिन अंग्रेज़ों से अनबन होने के कारण उसने अवध के नवाब शुजाउद्दौला से सहायता की प्रार्थना की। उस समय मुगल सम्राट शाह आलम भी वहीं था। अतः इन तीनों ने मिलकर अंग्रेज़ों को सबक सिखाने की योजना बनाई और 1764 ई. में इनका अंग्रेज़ों से बक्सर नामक स्थान पर युद्ध हुआ। युद्ध में तीनों की संयुक्त सेना हार गई। इसके फलस्वरूप बंगाल कंपनी के शासन की बेड़ियों में जकड़ गया।

क्या आप जानते हैं? : भारत में अंग्रेज़ी राज्य की औपचारिक नींव 1757 ई. में प्लासी की लड़ाई के साथ ही रखी गई थी तथा 1798 ई. में लॉर्ड मार्क्विस वैलेजली ने सहायक संधि की नीति अपनाई।

3. अवध : अवध के स्वतंत्र राज्य की स्थापना 'सआदत खाँ बुरहान-उल-मुल्क' ने की। उसकी नियुक्ति 1722 ई. में अवध के मुगल सूबेदार के रूप में हुई थी। उसने विद्रोही ज़मींदारों को दबाया, उनके विरुद्ध सैनिक कार्यवाही की और उन्हें भू-राजस्व देने पर विवश किया। उन्होंने प्रशासन एवं सेना को श्रेष्ठ बनाने का प्रयास किया। उसने अवध के किसानों की दशा सुधारने का प्रयास किया और ज़मींदारों के अत्याचारों से उनकी रक्षा की। उसकी 1739 ई. में मृत्यु के पश्चात् उसका भतीजा सफदरजंग अवध का शासक बना। उसने रूहेलों और पठानों के विरुद्ध संघर्ष किया। उन्होंने मराठों और जाटों के प्रति मित्रता की नीति अपनाई और रूहेलों तथा पठानों के विरुद्ध उनकी सहायता प्राप्त की। सफदरजंग ने 1754 ई. तक शासन किया। 1764 ई. में बक्सर के युद्ध में यहाँ का नवाब शुजाउद्दौला अंग्रेजों से हार गया।

4. राजपूत राज्य : राजपूताना के प्रमुख राजपूत राज्यों ने मुगल साम्राज्य की कमजोरी का लाभ उठाकर अपनी स्वतंत्रता की घोषणा कर दी। उन्होंने अपनी शक्ति का पुनः विकास किया। प्रमुख रूप से आमेर, मेवाड़ और मारवाड़ के राजाओं ने अपनी शक्ति में वृद्धि की।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

क) **आमेर :** आमेर के शासक सवाई जयसिंह (1681–1743 ई.) ने राजपूत राजाओं में विशेष प्रसिद्धि प्राप्त की। उन्होंने 1708 ई. में अपने पूरे राज्य पर अधिकार कर किया। उसने जयपुर नगर की स्थापना की, जो आज भी राजस्थान का सुन्दर नगर माना जाता है। उसने कला और विज्ञान में बड़ी रुचि ली। वह अपने युग का एक महान् खगोलशास्त्री था। उसने जयपुर, दिल्ली, मथुरा और उज्जैन में वेधशालाएँ बनवाई।

ख) **मारवाड़ :** यहाँ भी औरंगज़ेब की मृत्यु के बाद राजा अजीत सिंह ने स्वतंत्रता की घोषणा की। मारवाड़ को अधीन रखने के लिए मुगल शासकों ने प्रयास किए लेकिन वे असफल रहे और राजा अजीत सिंह ने अपने पूर्वजों के राज्य को पुन: प्राप्त कर लिया।

ग) **बून्दी :** इस समय यहाँ राव सुरजन हाडा के वंशज बुद्ध सिंह ने भी स्वयं को स्वतंत्र घोषित किया जिसे आगे चलकर मुगल शासक फर्रूखसियर ने मान्यता दी। इस वंश ने यहाँ विशिष्ट चित्रकला शैली का विकास भी किया। अठारहवीं शताब्दी में यहाँ कई शासकों ने शासन किया, जैसे राजा दलेल सिंह, उमेद सिंह व अजीत सिंह। राजपूत राज्य इस शताब्दी में निरंतर विकास एवं विस्तार करते रहे तथा इन्होंने अपने साम्राज्य को चरम सीमा तक पहुँचा दिया।

5. सिक्ख राज्य : अठारहवीं सदी के प्रारम्भ में गुरु गोविन्द सिंह की मृत्यु के बाद सिक्खों का आंदोलन धार्मिक आंदोलन से एक राजनीतिक आंदोलन में परिवर्तित हो गया और इसका मुख्य लक्ष्य मुगल साम्राज्य के आधिपत्य को समाप्त करना था, जिसका नेतृत्व बंदा बहादुर ने किया। बंदा बहादुर ने लौहगढ़ को प्रथम सिक्ख राज्य की राजधानी बनाया। इस समय मुगल शासक फर्रूखसियर ने सिक्खों के विरुद्ध सेना भेजी। बंदाबहादुर बन्दी बना लिए गए। 1716 ई. में बंदा बहादुर का निर्दयता से वध कर दिया गया। सिक्खों को अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण भी झेलने पड़े। सिक्खों ने बिना विचलित हुए गुरिल्ला युद्ध प्रणाली से अब्दाली को खदेड़ दिया। कालान्तर में पंजाब में 12 मिसलें अस्तित्व में आई। राजा रणजीत सिंह की सुकरचकिया मिसल प्रमुख थी, जिसने अफगानिस्तान तक के क्षेत्र को जीतकर सिक्ख साम्राज्य का विस्तार किया। रणजीत सिंह ने अपनी सेना का यूरोपीय ढंग से गठन किया।

6. हैदराबाद : दक्षिण भारत में एक स्वतंत्र राज्य हैदराबाद की स्थापना निजाम-उल-मुल्क आसफजाह ने 1724 ई. में की। उसने सैय्यद बंधुओं के पतन में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी, जिसके इनाम के तौर पर मुगल शासक ने उसे दक्षिण की सूबेदारी दी। दिल्ली दरबार में गुटबंदी होने व मुगल-सम्राट की निर्बलता का लाभ उठाकर उसने मुगलों की अधीनता मानने से इन्कार कर दिया। उसने मुगल शासक की अनुमति के बिना युद्ध और सन्धियाँ की। वह अपने राज्य का विस्तार करने लगा। इसी के परिणामस्वरूप बाजीराव ने 1728 ई. में

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

पालखेत के युद्ध में उसे हराया, जिसके कारण उन्होनें मराठा संघ को चौथ व सरदेशमुख देना भी स्वीकारा। 1748 ई. में निजाम की मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र नासिरजंग और पोते मुज्जफरजंग में हैदराबाद के सिंहासन के लिए युद्ध प्रारम्भ हो गया। इस युद्ध में फ्रांसीसियों ने मुज्जफरजंग का व अंग्रेज़ों ने नासिरजंग का पक्ष लिया। फ्रांसीसियों ने एक षडयंत्र से नासिरजंग का वध करवा दिया व मुज्जफरजंग को गद्दी पर बैठाया। आगे के शासक कमजोर सिद्ध हुए जिससे हैदराबाद राज्य की स्थिति कमजोर होती चली गई। 1798 ई. में निजामअली ने अंग्रेज़ों से सहायक सन्धि कर ली और हैदराबाद अंग्रेज़ों पर आश्रित हो गया।

हैदराबाद
वर्तमान समय में आन्ध्रप्रदेश व तेंलगाना राज्य की राजधानी है।

7. कर्नाटक : मुगल साम्राज्य की कमजोरी का लाभ उठाकर कर्नाटक के नायब सूबेदार सआदत उल्ला खाँ ने भी स्वतंत्र व्यवहार करना शुरू कर दिया। सआदत उल्ला खाँ के बाद दोस्त अली खान यहाँ का नवाब बना लेकिन हैदराबाद की तरह कर्नाटक में भी उत्तराधिकार के लिए युद्ध शुरू हो गया। दोस्तअली खान की मृत्यु के बाद अनवरउद्दीन नवाब बना तो उनके दामाद चन्दा साहब ने कर्नाटक की गद्दी पर अपना दावा पेश किया और गद्दी प्राप्त करने में सहायता देने के लिए फ्रांसीसियों की शरण ली। फ्रांसीसियों की सहायता से चन्दा साहब ने कर्नाटक पर आक्रमण करके अनवरउद्दीन को पराजित किया। चन्दा साहब कर्नाटक का नवाब बन गया लेकिन अंग्रेज़ उसे पसंद नहीं करते थे। अंग्रेज़ों ने चन्दा साहब की राजधानी अर्काट पर आक्रमण करके उसकी हत्या कर दी। कर्नाटक अब अंग्रेज़ों के प्रभाव में आ गया। हैदराबाद व कर्नाटक की राजनीतिक स्थिति के कारण अंग्रेज़ और फ्रांसीसियों के मध्य कर्नाटक के तीन युद्ध हुए।

8. जाट राज्य : मुगल सम्राट औरंगजेब की आर्थिक एवं धार्मिक नीतियों से परेशान होकर मथुरा तथा उसके आस-पास के क्षेत्रों में गोकुल के नेतृत्व में जाटों ने भी अपनी स्वतंत्रता के लिए संघर्ष किया। यद्यपि संघर्ष को कुचलने के बाद भी जाट नेता राजाराम तथा चूड़ामन के नेतृत्व में संघर्ष जारी रहा। बहादुर शाह प्रथम ने संघर्ष को कम करने के लिए जाटों से समझौता करके चूड़ामन को मुगल दरबार में पंद्रह सौ जात तथा पाँच सौ सवार का मनसबदार बना दिया। फिर भी चूड़ामन ने मुगल सम्राट की दुर्बलता का लाभ उठाकर शक्तिशाली बनने का प्रयास किया। मुगल सम्राट फर्रूखसियर ने जाटों की बढ़ती हुई शक्ति को रोकने के लिए उन्हें राजपूतों के साथ आपस में लड़वाने का प्रयास किया।

चित्र-3. महाराजा सूरजमल

चूड़ामन की मृत्यु के पश्चात् बदन सिंह व उसके पुत्र सूरजमल ने दिल्ली के आसपास के क्षेत्रों पर अपना अधिकार कर लिया। सूरजमल एक

©BSEH, Bhiwani Not to be republished

चतुर एवं योग्य नेता था। उन्होनें अहमदशाह अब्दाली के आक्रमणों का भी सामना किया। इनकी मृत्यु के पश्चात् जवाहर सिंह, रतनसिंह, केसरी सिंह तथा रणजीत सिंह जाटों के प्रमुख नेता बने। इन्होंने अठारहवीं शताब्दी के अंत तक संघर्ष किया और स्वतंत्र विचारधारा के प्रवाह को आगे बढ़ाते रहे।

मनसब - **पद, दर्जा**
जात - **व्यक्तिगत पद**
सवार - **घुड़सवार**

9. रूहेलखण्ड : रूहेलखण्ड तथा बंगश पठानों के राज्यों की स्थापना, सत्रहवीं सदी के अफगानों के विस्थापन का परिणाम थी। अफगानिस्तान में अठारहवीं सदी के मध्य में राजनैतिक तथा आर्थिक अस्थिरता पैदा हो जाने के कारण बहुत बड़ी संख्या में अफगानी रोह घाटी में विस्थापित होकर आए। कुछ समय के पश्चात् अवध के शासक ने अंग्रेज़ों के सहयोग से इन्हें समाप्त कर दिया। नादिरशाह के आक्रमण के बाद उत्तर भारत में अराजकता की स्थिति पैदा हो गई। इसका लाभ उठाते हुए मुहम्मद खाँ ने रूहेलखण्ड के एक छोटे राज्य की स्थापना की। यह क्षेत्र हिमालय की तलहटी के उत्तर में कुमायूं पहाड़ियों तथा दक्षिण में गंगा नदी के बीच स्थित था। इस राज्य को आगे चलकर जाटों और अवध के शासकों तथा बाद में मराठों एवं अंग्रेज़ों के हाथों पराजित होना पड़ा।

रूहेलखण्ड ब्रिट्रिश भारत के नौ प्रशासनिक मण्डलों में से एक था। यह भारत के उत्तर प्रदेश राज्य में है। इसके अन्तर्गत मुख्यरूप से बिजनौर, मुरादाबाद, बदायूँ, बरेली, पीलीभीत, शाहजहाँपुर, रामपुर के जिले आते हैं।

दिल्ली से पूरब की ओर फरूर्खाबाद में एक अफगान सरदार मोहम्मद खान बंगश ने स्वतंत्र राज्य की स्थापना की। इसने भी कमजोर होती मुगल सत्ता का लाभ उठाते हुए अलीगढ़ व कानपुर के महत्वपूर्ण भू-भाग पर स्वतंत्र राज्य कायम किया।

10. बुंदेलखण्ड : बुंदेलखण्ड भारत के मध्य में स्थित महत्वपूर्ण क्षेत्र था। यहाँ महाराजा छत्रसाल के द्वारा विशाल साम्राज्य स्थापित किया गया। 1728 ई. में जब मुहम्मद खाँ बंगश ने यहाँ आक्रमण किया तो पेशवा बाजीराव ने सहायता की और बंगश को पराजित किया। आगे चलकर यह राज्य मराठों के संरक्षण में चला गया।

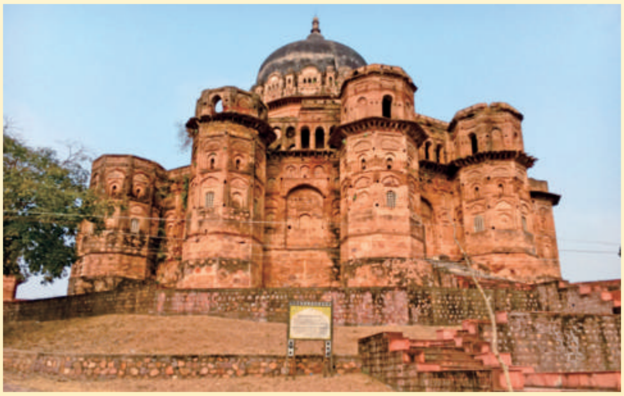

चित्र-4. महाराजा छत्रसाल का किला (बुंदेलखंड)

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

बुन्देलखण्ड-राज्य आधुनिक उत्तर प्रदेश व मध्यप्रदेश राज्यों में पड़ता है। इसमें उत्तर प्रदेश के मुख्य जिले महोबा, झांसी, बांदा, ललितपुर, जालौन, अमीरपुर, चित्रकूट तथा मध्य प्रदेश के मुख्य जिले छतरपूर, सागर, पन्ना, टीकमगढ़, दमोह, विदीशा, दतिया, भिंड व सतना है।

अठारहवीं सदी में भारतीय समाज एवं अर्थव्यवस्था

1. कृषि आधारित परम्परागत अर्थ व्यवस्था का होना।
2. ग्रामीण सामाजिक संरचना का आत्मनिर्भर होना।
3. प्रकृति पर निर्भर संसाधनों का होना।
4. संयुक्त परिवार प्रणाली एवं पुरुष प्रधान समाज का होना।
5. भारतीय समाज में मध्य वर्ग का उदय होना।

भारतीय समाज आर्थिक दृष्टि से विषमताओं से भरा हुआ था। यहाँ स्वावलंबन व आत्मनिर्भरता थी। अधिकतर लोग कृषि व्यवसाय से जुड़े हुए थे। समाज में जहाँ एक ओर अमीर वर्ग विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत कर रहा था तो दूसरी ओर निर्धन किसान, काश्तकार, मजदूर आदि जनसाधारण कष्ट में था। भारत का सूती वस्त्र उद्योग, पटसन उद्योग, धातु-बर्तन उद्योग, आभूषण उद्योग आदि उच्च कोटि के थे। विदेशी आक्रमणों ने भारत की अर्थव्यवस्था को तहस-नहस कर दिया था।

अठारहवीं सदी में भारत की राजनैतिक स्थिति अराजकतापूर्ण ही रही। आपसी संघर्ष एवं विदेशी आक्रमणों ने भारत की राजनैतिक व आर्थिक स्थिति को पूरी तरह से डावांडोल कर दिया था। इसके अतिरिक्त संपूर्ण भारत छोटे-छोटे स्वतंत्र तथा अर्द्ध स्वतंत्र राज्यों में विभाजित हो गया था। इस स्थिति का लाभ पुर्तगालियों, डचों, फ्रांसीसियों व अंग्रेज़ों नें उठाया परिणामस्वरूप अंग्रेज़ों ने भारत की सार्वभौम सत्ता पर अधिकार करके अपनी सर्वोच्चता स्थापित कर ली।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

भारत में यूरोपीय शक्तियाँ

यूरोपीय शक्तियों के लगभग एक साथ भारत में प्रवेश से इन शक्तियों के परस्पर संघर्ष का जन्म हुआ तथा अन्त में अंग्रेज़ इसमें सफल हुए। व्यापार के लिए भारत में यूरोप से कई कम्पनियाँ आई जैसे: पुर्तगाली, डच, अंग्रेज़, फ्रांसीसी, डेनिश आदि, जिन्होंने व्यापार हेतु भारत में अपने पैर फैलाए। इनमें अंग्रेज़ सामान्यतया पूरे भारत में अपना राजनैतिक आधिपत्य जमाने में सफल रहे और 1947 ई. तक भारत को अपने अधीन बनाए रखा।

भारत में अंगेज़ों ने व्यापार को उत्तरोत्तर सुदृढ़ एवं विकसित किया। उन्होंने 18वीं शताब्दी के द्वितीय दशक

में सम्राट फर्रूखसियर से व्यापारिक सुविधाएं प्राप्त करके व्यापार को और अधिक फैलाया। इसके अतिरिक्त अंग्रेज़ों के द्वारा षड्यंत्रों से समृद्ध प्रान्त बंगाल में भी अपना आधिपत्य जमा लिया व हैदाराबाद और मैसूर में भी आपस में भारतीय शक्तियों को आपस में लड़वाकर अपना प्रभुत्व बनाया। 1757 ई. में प्लासी का षड्यन्त्रकारी युद्ध तथा 1764 ई. में बक्सर का युद्ध तथा मैसूर एवं कर्नाटक में भारतीय शक्तियों को आपस में लड़ाकर अपना प्रभुत्व जमाया।

क्या आप जानते हैं?

17वीं एवं 18वीं शताब्दी में भारत में कौन-कौन सी विदेशी कम्पनियां आईं थीं?

1717 ई. में मुगल सम्राट फर्रूखसियर ने एक शाही फरमान द्वारा अंग्रेज़ों को अनेक व्यापारिक सुविधाएं प्रदान की। जिसके कारण आने वाले समय में भारत को भारी आर्थिक हानि उठानी पड़ी।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

पाठ का सार

- 1717 ई. में मुगल सम्राट फर्रूखसियर ने ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी को अनेक रियायतें दी।
- भारत का उच्च कोटि का सूती एवं रेशमी कपड़ा, मसाले, नील, शक्कर, औषधियां एवं बहुमूल्य रत्न किसी भी राष्ट्र को लालायित करने के लिए काफी थे।
- दिल्ली दरबार में गुटबंदी होने व मुगल-सम्राट की निर्बलता का लाभ उठाकर स्वतंत्र राज्य हैदराबाद की स्थापना निज़ाम-उल-मुल्क आसफ़जाह ने 1724 ई. में की।
- पंजाब में सुकरचकिया मिसल के शासक रणजीत सिंह महान शासक थे।

आओ याद करें :

1. राजाराम की 1700 ई. में मृत्यु के उपरांत इसकी पत्नी ताराबाई ने मुगलों के विरुद्ध संघर्ष जारी रखा।
2. मुगल सम्राट फर्रूखसियर ने 1717 ई. में मुर्शिद कुली खां को बंगाल का सूबेदार नियुक्त किया।
3. बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला एवं अंग्रेजों के मध्य 23 जून, 1757 ई. को प्लासी की लड़ाई हुई।
4. 1722 ई. में अवध में सआदत खान ने स्वतंत्र राज्य की स्थापना की।
5. पंजाब के महाराजा रणजीत सिंह का संबंध सुकरचकिया मिसल से था।
6. हैदराबाद में स्वतंत्र राज्य की स्थापना 1724 ई. में निजाम-उल-मुल्क आसफजाह ने की थी।
7. कर्नाटक में अनुवरुदीन की मृत्यु के बाद चंदा साहिब नवाब बना।
8. महाराजा छत्रसाल ने बुंदेलखंड में स्वतंत्र राज्य की स्थापना की।

रिक्त स्थान भरें :

1. प्लासी की लड़ाई .... ई. में लड़ी गई।
2. पंजाब में उस समय कुल .... मिसलें थीं।
3. मारवाड़ में .... ने स्वतन्त्रता की घोषणा की।
4. बक्सर का युद्ध .... ई. में हुआ।
5. जयपुर नगर की स्थापना .... ने की।

उचित मिलान कीजिए :

1.	शिवाजी	सवाई जयसिंह
2.	प्लासी का युद्ध	1707 ई.
3.	बंदा बहादुर का वध	महाराष्ट्र
4.	औरंगज़ेब की मृत्यु	1757 ई.
5.	खगोलशास्त्री शासक	1716 ई.

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

आओ विचार करें :

1. मराठा शक्ति का उत्कर्ष कैसे हुआ?
2. पानीपत के तीसरे युद्ध का क्या महत्व था?
3. 18वीं शताब्दी में बंगाल की राजनीतिक स्थिति कैसी थी?
4. 18वीं शताब्दी में भारतीय समाज एवं अर्थव्यवस्था की प्रमुख विशेषताएं कौन-कौन सी थी?
5. अवध एक स्वतंत्र राज्य के रूप में कैसे स्थापित हुआ?

आओ करके देखें :

1. भारत के मानचित्र पर 18वीं शताब्दी के राज्यों को दर्शाइए।
2. यदि आप पानीपत के तीसरे युद्ध में सेनापति होते तो मराठों को युद्ध जिताने के लिए क्या योजना बनाते? अपने विचार प्रकट कीजिए।

परियोजना कार्य :

अठारहवीं सदी के राज्यों की जानकारी संग्रह करके उनकी स्थिति की चर्चा कीजिए।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

अध्याय

7 यूरोपियन घुसपैठ तथा उनकी विस्तारवादी नीतियाँ

समाचारों में अक्सर पढ़ने अथवा सुनने को मिलता है कि :

- ❖ सेना द्वारा सीमा पर आतंकवादियों की घुसपैठ को विफल कर दिया गया।
- ❖ बहुत से तस्कर सीमा पर घुसपैठ की इन्तजार में बैठे हैं।
- ❖ सिपाहियों ने चार घुसपैठियों को मार गिराया।

इस प्रकार की बातों से एक बात तो स्पष्ट हो जाती है कि घुसपैठिया वो होता है जो हमारी अनुमति के बिना हमारे क्षेत्र में आ बैठता है और अपने लाभ के लिए हमें नुकसान पहुंचाने से भी नहीं चूकता है। अन्य देशों के साथ हमारे देश का व्यापार तो सदियों से चला आ रहा था किन्तु यूरोपीय शक्तियों ने व्यापार की आड़ में यहाँ के सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक जीवन को नकारात्मक रूप से प्रभावित किया।

©BSEH Bhiwani
Not to be republished

प्राचीन काल से ही विश्व के कई देशों से भारत के व्यापारिक सम्बन्ध रहे हैं। यूरोपीय देशों में भारतीय सामान की आपूर्ति मुख्यत: लाल सागर और भूमध्य सागर के मार्ग से की जाती थी। थोड़ा बहुत व्यापार स्थल मार्ग से भी होता था जो अफगानिस्तान तथा ईरान से होकर गुजरता था। इस समय तक भारतीय व्यापार पर अरब व्यापारियों का ही एकाधिकार था। पंद्रहवीं शताब्दी के मध्य में तुर्कों द्वारा पश्चिमी एशिया और पूर्वी यूरोप तथा मिस्र पर अधिकार कर लिया गया तथा इस मार्ग से होने वाले व्यापार में बाधाएं उत्पन्न करनी शुरू कर दी। इस प्रकार काफी समय से प्रचलित यह व्यापार मार्ग अवरुद्ध हो गया। यूरोपीय बाजारों में भारतीय सामान की माँग तथा इस व्यापार में अरबों के एकाधिकार को समाप्त करने के लिए एक नए और सुरक्षित व्यापार मार्ग की आवश्यकता महसूस की जाने लगी।

नए व्यापारिक मार्ग की खोज के कार्य में पुर्तगालियों ने मार्गदर्शक का कार्य किया। पुर्तगाली राजकुमार हैनरी ने नाविकों को वैज्ञानिक ढंग से प्रशिक्षित करने के लिए एक विद्यालय की स्थापना की। उनके इस प्रयास से उत्साहित और प्रेरित नाविकों ने नए-नए मार्गों की खोज करना शुरू कर दिया था। इसी क्रम में बार्थोलोम्यूडियाज ने 1486-87 ई. में आशा अंतरीप तक के मार्ग को खोज निकाला। इटली के नाविक क्रिस्टोफर कोलंबस ने 1492 ई. में स्पेन के राजा की सहायता से भारत के लिए समुद्री मार्ग की खोज का प्रयास किया। कोलंबस भारत पहुंचने की बजाय उत्तरी अमेरिका के द्वीप वेस्ट इंडीज पहुंच गया। इसके बाद एक पुर्तगाली नाविक 'वास्को-डी-गामा' ने 1497 ई. में भारत की समुद्री यात्रा आरम्भ की तथा उत्तम आशा अंतरीप पार कर मोज़ाम्बिक पहुँचा। मलिंदी नामक अफ्रीकी बंदरगाह से एक गुजराती व्यापारी की सहायता से वह मई 1498 ई. को भारत के पश्चिमी तट पर स्थित कालीकट बंदरगाह पर पहुंचा। इस प्रकार यूरोप से भारत के लिए एक नए समुद्री मार्ग की खोज पूरी हुई।

क्या आप जानते हैं ?

यह एक मिथक है कि वास्को-डी-गामा ने भारत की खोज की थी। वास्तव में उसने भारत पहुंचने के लिए एक नवीन जल मार्ग का पता लगाया था, न कि भारत को खोजा था।

बताइए

- भारत पहुंचने के लिए वास्को-डी-गामा को किस महाद्वीप का चक्कर लगाना पड़ा था?
- वास्को-डी-गामा भारत में कहां पर पहुंचा था?

सबसे पहले पुर्तगाली घुसपैठ : 1498 ई. में वास्को-डी-गामा द्वारा भारत आने के नए समुद्री मार्ग का पता लगाने के बाद सबसे पहले पुर्तगालियों ने ही भारत के साथ प्रत्यक्ष व्यापार करना शुरू किया। सन् 1500 ई. में

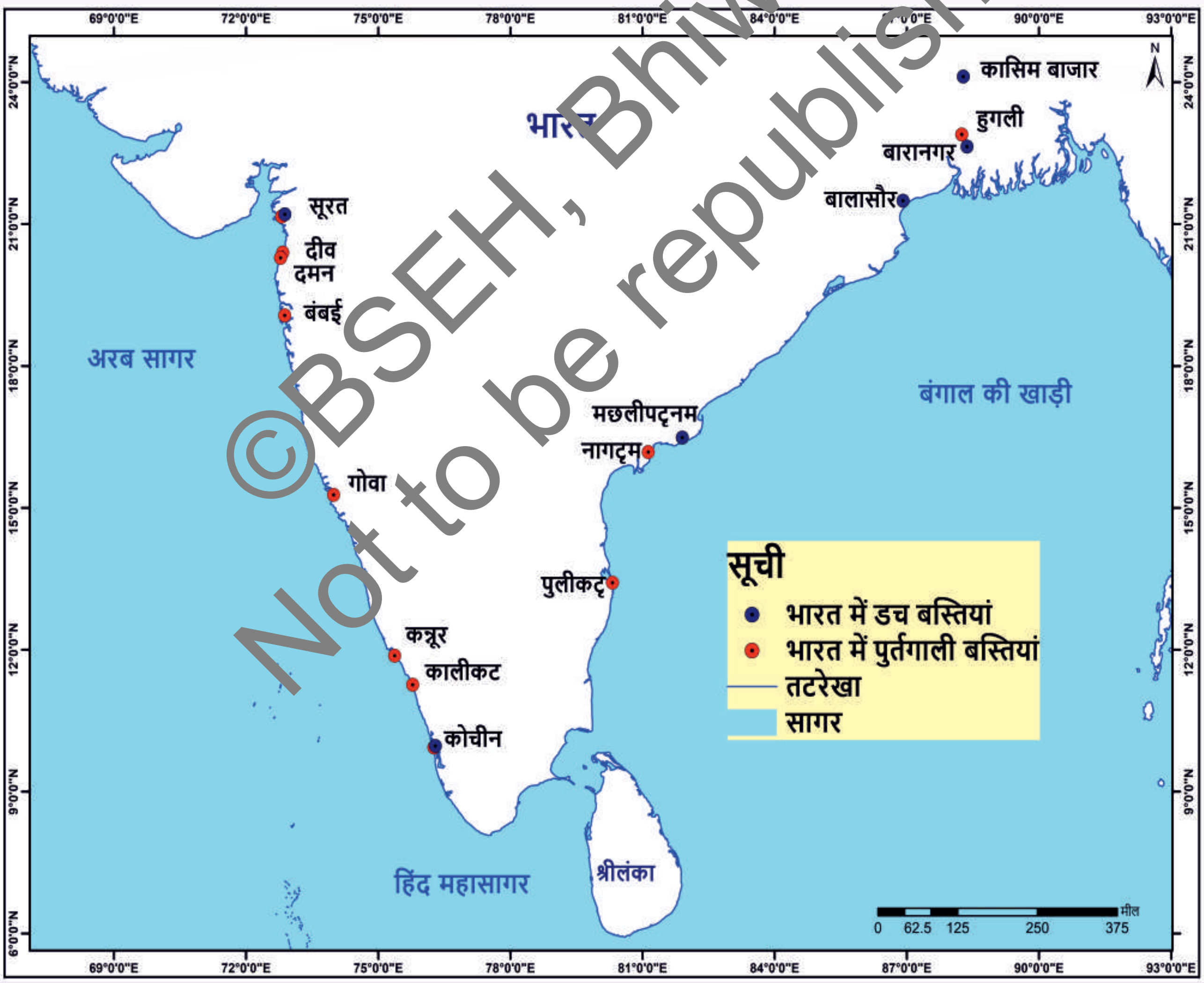

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

पुर्तगालियों ने कोचीन (केरल) के पास अपनी फैक्टरी बनाई। वहां के शासक से फैक्टरी की सुरक्षा का भी इंतजाम करवा लिया क्योंकि अरब व्यापारी उसके खिलाफ थे। इसके बाद कालीकट और कन्नूर में भी पुर्तगाली फैक्टरियाँ बनाई गई। उस समय तक पुर्तगाली भारत में अकेली यूरोपीय व्यापारिक शक्ति थी। उन्हें बस अरबों के विरोध का सामना करना पड़ता था लेकिन पुर्तगालियों ने अपने उत्कृष्ट समुद्री जहाजों के बल पर समुद्री व्यापार पर अपना वर्चस्व स्थापित कर लिया। उन्होंने गवर्नर अल्मीडा तथा अल्बुकर्क के योग्य नेतृत्व में अपना विस्तार करना शुरू कर दिया। सन् 1510 ई. में पुर्तगालियों ने गोवा पर अपना अधिकार कर लिया तथा उसे अपना प्रशासनिक केंद्र बनाया। शीघ्र ही उन्होंने सूरत, दमन–दीव, बसीन, सालसिट, बंबई (मुंबई), दाभोल, गोवा, कन्नूर, कालीकट, कोचीन, नागट्टम, मछलीपट्टनम, हुगली आदि स्थानों पर अपना नियंत्रण स्थापित कर लिया लेकिन जबरन धर्म परिवर्तन तथा भ्रष्ट आचरण के कारण शीघ्र ही वे पतन की ओर अग्रसर हो गए। सोलहवीं शताब्दी में डचों से मिली चुनौती से वे गोवा एवं दमन–दीव तक सिमट कर रह गए।

डच घुसपैठ : पुर्तगालियों के बाद भारत आने वाली दूसरी यूरोपीय शक्ति थी डच। डचों ने 16वीं सदी के अंतिम दशक में पूर्व से व्यापार करने के लिए कई व्यापारिक कंपनियों की स्थापना की। तत्कालीन डच सरकार ने इन कंपनियों के बीच शत्रुता और स्पर्धा समाप्त करने के लिए 1602 ई. में सभी कंपनियों को मिलाकर डच ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना की तथा उसे भारत तथा अन्य पूर्वी देशों के साथ व्यापार करने का भारत में डचों द्वारा स्थापित बस्तियों पर एकाधिकार भी प्रदान कर दिया। इसके साथ-साथ उसे युद्ध लड़ने, संधियां करने तथा प्रदेश विजय करने और दुर्ग बनाने के अधिकार भी दे दिए गए। 1602 ई. में ही डचों ने पुर्तगाली बेड़े को हरा कर गरम मसालों के व्यापार पर अपना अधिकार कर लिया। शीघ्र ही उन्होंने पुलीकट, सूरत, चिन्सुरा, कोचीन, नागपट्टम, बालासोर, कासिम बाजार तथा बारानगर पर अपना आधिपत्य स्थापित कर पुर्तगाली एकाधिकार को समाप्त कर दिया। अंग्रेज़ों के आगमन के बाद डचों का प्रभाव भी कम होता चला गया।

अंग्रेज़ों की घुसपैठ : पुर्तगालियों की भारतीय व्यापार से हुई समृद्धि ने अंग्रेज़ों को भी काफी प्रभावित किया और वे भी भारत के साथ व्यापार के लिए उतावले हो उठे। 1578 ई. में फ्रांसिस ड्रेक नामक समुद्री लुटेरे ने लिस्बन जा रहे पुर्तगाली समुद्री जहाज को लूट लिया और इस लूट में मिले नक्शों से उन्हें भारत के समुद्री मार्ग की जानकारी मिली। 1588 ई. में अंग्रेज़ी जहाजी बेड़े ने स्पेन के शक्तिशाली समुद्री बेड़े आर्मेदा को नष्ट कर दिया और इस प्रकार समुद्री मार्ग पर अपना वर्चस्व स्थापित कर लिया। 31 दिसम्बर 1600 ई. को ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना की गई तथा ब्रिटेन की महारानी एलिजाबेथ (प्रथम) द्वारा इसे भारत के साथ व्यापार करने का आज्ञा पत्र दे दिया गया। इसके बाद अंग्रेज़ों ने कप्तान हॉकिन्स और सर टॉमस रो के प्रयासों से भारत में व्यापार शुरू किया और यहां पर अपनी व्यापारिक फैक्टरियां स्थापित करनी शुरू की। इसी क्रम में

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

अंग्रेज़ों ने 1611 ई. में मछलीपट्टनम में अपनी पहली व्यापारिक फैक्टरी स्थापित की। इसके बाद अंग्रेज़ों ने पहले से स्थापित पुर्तगालियों और डचों को पराजित कर सूरत, कासिम बाजार, विशाखापट्टनम, बालासोर, फोर्ट सेंट जॉर्ज आदि स्थानों पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। ब्रिटेन के राजकुमार चार्ल्स द्वितीय की शादी पुर्तगाल के राजा की बेटी कैथरीन से हो गई और चार्ल्स द्वितीय को पुर्तगालियों से दहेज में बम्बई के सात द्वीप मिले। 1668 ई. में चार्ल्स द्वितीय ने 10 पौंड वार्षिक किराये पर बम्बई ईस्ट इंडिया कंपनी को किराये पर दे दिया जो आगे चलकर उनके व्यापार का प्रमुख केंद्र बना। इसके बाद अंग्रेज़ों ने बंगाल में सुतानाती, गोविंदपुर तथा कोलकाता नामक तीन गांवों की ज़मींदारी प्राप्त की तथा यहां पर फोर्ट विलियम नामक दुर्ग की स्थापना की।

गतिविधि

- ❑ ब्रिटेन के नागरिकों को ही हम अंग्रेज क्यों कहते हैं?
- ❑ सबसे पहले भारत छोड़कर जाने वाली यूरोपीय शक्ति कौन सी थी?
- ❑ ज्यादातर अंग्रेज़ी बस्तियां भारत के किस तट पर स्थित थी?

डेनिश घुसपैठ : अपने पड़ोसियों ब्रिटेन, नीदरलैंड और पुर्तगाल के भारत के साथ व्यापार को देखकर डेनमार्क ने भी 1616 ई. में डेनिश ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना की तथा इस कंपनी ने 1620 ई. में तंजौर जिले में ट्रावनकौर में पहली डेनिश बस्ती की स्थापना की। इसके बाद इन्होंने बंगाल के सीरामपुर में अपनी दूसरी बस्ती स्थापित की जो कि भारत में इनकी व्यापारिक गतिविधियों का मुख्यालय बनी। डेनिश भारत में अपनी स्थिति को ज़्यादा मजबूत नहीं कर सके तथा 1845 ई. में अपनी सारी बस्तियां ब्रिटिश सरकार को बेच कर यहां से चले गए।

सबसे बाद में फ्रांसीसी घुसपैठ : भारत के साथ व्यापार की दौड़ में फ्रांसीसी सबसे बाद में शामिल हुए थे। फ्रांसीसी सम्राट लुई चौदहवें के प्रयासों से 1664 ई. में फ्रांसीसी ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना की गई। सम्राट द्वारा इस कंपनी को उपनिवेश स्थापित करने, धर्म प्रचार करने तथा युद्ध व संधि करने के अधिकार प्रदान किये गए। इस कंपनी ने 1668 ई. में सूरत व 1669 ई. में मछलीपट्टनम में अपनी व्यापारिक फैक्टरियां स्थापित की। इसके बाद इन्होंने पांडिचेरी, माही, चंद्रनगर आदि स्थानों पर भी अपना आधिपत्य जमा लिया। अपनी स्थिति को मजबूत करने के लिए इन्होंने यहां के शासकों के आंतरिक मामलों में भी दखल देना शुरू कर दिया। इस प्रकार फ्रांसीसी अंग्रेज़ों के लिए सशक्त प्रतिद्वंद्वी बनते जा रहे थे। वर्चस्व की इस लड़ाई में अंग्रेज़ों और फ्रांसीसियों का संघर्ष होना निश्चित हो गया था।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

अंग्रेज़ों का विस्तार और एकाधिकार

भारत में अंग्रेज़ों द्वारा अपने विस्तार व एकाधिकार को दो चरणों में पूरा किया गया :

1. **यूरोपीयन शक्तियों से संघर्ष :** पुर्तगालियों और डचों की शक्ति क्षीण होने पर भारत में अंग्रेज़ और फ्रांसीसीयो दो ही शक्तिशाली प्रतिद्वंद्वी रह गए थे। भारत के व्यापार पर एकाधिकार एवं भारतीय राजनीति में सर्वोच्चता प्राप्त करने के लिए दोनों में संघर्ष होना लाज़मी था। दोनों शक्तियों में संघर्ष हुआ, जिसके निम्न कारण थे :

- अंग्रेज़ों और फ्रांसीसियों के बीच संघर्ष का मुख्य कारण व्यापारिक स्पर्धा थी दोनों की भारत के विदेशी व्यापार पर एकाधिकार स्थापित करने की मंशा थी। दोनों ही एक दूसरे को भारत से निकालकर अपनी राजनीतिक महत्वाकांक्षा पूरी करना चाहते थे।
- अंग्रेज़ और फ्रांसीसी दोनों यूरोप में कट्टर शत्रु थे, इसलिए जब भी यूरोप में दोनों के बीच संघर्ष होता तो वे यहां भी एक दूसरे से उलझ पड़ते।
- फ्रांसीसी नायक डुप्ले की महत्वाकांक्षा ने ब्रिटिश कंपनी को बेचैन कर दिया था। उसने पांडिचेरी की किलेबंदी शुरू कर दी तथा अपनी सैन्य शक्ति बढ़ाने पर भी जोर दिया। इसकी प्रतिक्रिया में अंग्रेज़ों द्वारा भी ऐसा ही किया गया और भारत में इन दो शक्तियों का संघर्ष अवश्यम्भावी हो गया।

2. **स्थानीय शासकों से संघर्ष :** यूरोपीय शक्तियों पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने के बाद अंग्रेज़ों ने अपनी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए भारत के स्थानीय शासकों के साथ भी संघर्ष किया और येन केन प्रकारेण भारतीय शासकों को भी अपने अधीन कर लिया। इसके लिए अंग्रेज़ों द्वारा कई प्रकार के हथकंडे अपनाए गए जिन्हें इस प्रकार समझा जा सकता है :

- युद्धों द्वारा
- सहायक संधि द्वारा
- लैप्स की नीति द्वारा

1. यूरोपीयन शक्तियों से संघर्ष (एंग्लो फ्रांसीसी संघर्ष और कर्नाटक के युद्ध)

कर्नाटक का प्रथम युद्ध (1746-48 ई.) : ऑस्ट्रिया के उत्तराधिकार को लेकर यूरोप में फ्रांस और इंग्लैंड के बीच युद्ध हो रहा था। कर्नाटक का पहला युद्ध यूरोप के उसी युद्ध का विस्तार मात्र था। फ्रांसीसियों और अंग्रेज़ों के बीच 1746 में युद्ध आरंभ हो गया। अंग्रेज़ी नौसेना ने फ्रांसीसी जलपोत पकड़ लिए तो फ्रांसीसियों ने भी मद्रास को जल एवं स्थल दोनों ओर से घेरकर नियंत्रण में कर लिया। 1748 में 'एक्स ला शैपल की संधि' द्वारा यूरोप में दोनों देशों का युद्ध समाप्त हो गया जिसके बाद यहाँ भी दोनों शक्तियों के बीच युद्ध समाप्त हो गया और मद्रास अंग्रेज़ों को वापस लौटा दिया गया।

©BSEH Bhiwani
Not to be republished

कर्नाटक का दूसरा युद्ध (1749-54 ई.) : कर्नाटक का दूसरा युद्ध हैदराबाद व कर्नाटक के राज सिंहासनों के विवादास्पद उत्तराधिकार के कारण हुआ। एक पक्ष का समर्थन अंग्रेज़ कर रहे थे तो दूसरे पक्ष के समर्थन में फ्रांसीसी खड़े थे। प्रारंभ में फ्रांसीसियों की विजय हुई लेकिन बाद में 'क्लाइव' जैसे अनुभवी, योग्य एवं चतुर सेनानायकों के बल पर अंग्रेज़ विजयी रहे। 1754 में पांडिचेरी की संधि से दोनों पक्षों के बीच शांति स्थापित हुई तथा दोनों पक्षों ने एक दूसरे के विजित प्रदेश लौटा दिए और दोनों ही शक्तियों ने भारत में दुर्ग नहीं बनाने का आश्वासन दिया तथा भारतीय शासकों के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करने का वचन भी दिया। इस युद्ध में फ्रांसीसियों की प्रतिष्ठा को ठेस पहुंची तथा अंग्रेज़ों की स्थिति मजबूत हुई।

कर्नाटक का तीसरा युद्ध (1756-63 ई.) : 1756 ई. में यूरोप में अंग्रेज और फ्रांसीसियों के बीच सप्त-वर्षीय युद्ध शुरू हुआ तो भारत में भी दोनों शक्तियों के मध्य संघर्ष शुरू हो गया। फ्रांसीसियों ने त्रिचनापल्ली पर आक्रमण किया तो वहीं अंग्रेज़ों ने फ्रांसीसी बस्तियों बालासोर, पटना और कासिमबाजार पर अधिकार कर लिया। फ्रांस का कुशल सेनापति 'काउंट डी लाली' भी फ्रांसीसी सत्ता को बचाने में सफल नहीं हो पाया और 1760 ई. में वांडीवाश के युद्ध में फ्रांसीसियों की निर्णायक हार हुई। 1763 ई. में 'पेरिस की संधि' द्वारा सप्त-वर्षीय युद्ध के समाप्त होने पर भारत में भी दोनों शक्तियों का संघर्ष समाप्त हो गया। फ्रांसीसियों को पांडिचेरी और चंद्रनगर वापस लौटा दिए गए लेकिन अब वे न तो सेना ही रख सकते थे और न ही किलेबंदी कर सकते थे। इस प्रकार भारत में फ्रांसीसियों का प्रभाव लगभग समाप्त हो गया और अंग्रेज़ एकमात्र विदेशी शक्ति बनकर उभरे।

गतिविधि

- ❑ कर्नाटक युद्धों का सम्बन्ध किन दो शक्तियों से है?
- ❑ कर्नाटक के किस युद्ध में अंग्रेज़ निर्णायक रूप से विजयी रहे थे?
- ❑ कर्नाटक के तीसरे युद्ध की निर्णायक लड़ाई किस स्थान पर लड़ी गई थी?

2. स्थानीय शासकों से संघर्ष

प्लासी की लड़ाई : 1757 ई. में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी और बंगाल के नवयुवक नवाब सिराजुद्दौला के बीच बंगाल के प्लासी नामक स्थान पर यह लड़ाई लड़ी गई। यद्यपि नवाब की सेना अंग्रेज़ी सेना से बहुत बड़ी थी, परंतु अधिकांश सेना ने युद्ध में भाग ही नहीं लिया। सिराजुद्दौला के सेनानायकों में से मीर जाफर और राय दुर्लभ दोनों ने सिराजुद्दोला को धोखा दिया और युद्ध में भाग नहीं लिया। नवाब की सेना और क्लाइव की

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

सेना के बीच हुई झड़प में नवाब के 500 सैनिक और कंपनी के 65 सैनिक मारे गए। प्रसिद्ध इतिहासकार के.एम. पाणिकर के अनुसार प्लासी की घटना एक हुल्लड़ और भगदड़ थी, युद्ध नहीं। यह लड़ाई नवाब की सैनिक दुर्बलता के कारण नहीं अपितु क्लाइव के षड्यंत्र और कूटनीति के कारण अंग्रेज़ों द्वारा जीती गई। इस युद्ध के बाद अंग्रेज़ों ने मीर जाफर को बंगाल का नवाब बना दिया तथा उसने एक करोड़ रुपए व 24 परगने का क्षेत्र अंग्रेज़ों को उपहार में दे दिया। क्लाइव को निजी तौर पर 334000 पौंड की रिश्वत मिली। अंग्रेजों की शोषणकारी नीतियों के चलते मीर जाफर परेशान हो गया और अंग्रेज़ों के प्रभाव से मुक्ति के प्रयास किए तो अंग्रेज़ों ने उसके स्थान पर उसके दामाद मीर कासिम को नवाब बना दिया।

बक्सर का युद्ध : 1760 ई. में मीर जाफर के स्थान पर मीर कासिम को बंगाल का नवाब बनाया गया किंतु मीर कासिम महत्वाकांक्षी था और वह अंग्रेज़ों के प्रभाव को ज़्यादा दिन सहन नहीं कर सका। अंग्रेज़ों के प्रभुत्व से मुक्ति के लिए उसने अपनी राजधानी को मुर्शिदाबाद से बदलकर मुंगेर कर लिया। इससे नवाब और कंपनी के बीच तनाव उत्पन्न हुआ। तनाव के अधिक बढ़ने पर मीरकासिम ने भागकर अवध के नवाब शुजाऊदौला के यहां शरण ली। उस समय वहां पर मुगल सम्राट शाह आलम भी आया हुआ था। तीनों ने मिलकर कंपनी की सेना से 1764 ई. में बिहार में बक्सर नामक स्थान पर युद्ध लड़ा। इसमें कंपनी की सेना ने तीनों की सम्मिलित सेनाओं को पराजित किया तथा इलाहाबाद की संधि के द्वारा अंग्रेज़ों ने बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी अर्थात कर इकट्ठा करने का अधिकार प्राप्त कर लिया और बंगाल पर अंग्रेजों का पूर्ण प्रभुत्व स्थापित हो गया।

आंग्ल मैसूर युद्ध : मैसूर का राज्य महान विजयनगर साम्राज्य का अंग था विजयनगर के पतन के बाद मैसूर के वाडियार वंश के राजाओं ने अपना विस्तार किया। अठारहवीं शताब्दी के आरंभ में मैसूर में नंजराज एवं देवराज नामक दो मंत्रियों ने सत्ता पर कब्जा कर रखा था। यहाँ का राजा कृष्णराज कठपुतली मात्र था। ऐसे में हैदर अली नामक एक वीर एवं साहसी सेनानायक ने इन दोनों मंत्रियों की सत्ता समाप्त करके तथा वाडियार राजा को हटाकर मैसूर पर शासन करना शुरू कर दिया। अपनी विस्तारवादी नीति के कारण वह शीघ्र ही अंग्रेज़ों से उलझ गया। हैदर अली व उसके पुत्र टीपू सुल्तान ने अंग्रेज़ों से मैसूर के चार युद्ध लड़े।

चित्र-1. मैसूर का महल, मैसूर

क) **पहला युद्ध (1767-69 ई.) :** यह युद्ध हैदर अली और ब्रिटिश कंपनी के बीच लड़ा गया जिसमें हैदर अली का पलड़ा भारी रहा।

ख) **दूसरा युद्ध (1780-84 ई.) :** पहले हैदर अली ने इस युद्ध का नेतृत्व किया, किंतु बीमारी के

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

कारण उसकी मृत्यु हो जाने के बाद उसके पुत्र टीपू सुल्तान ने इस युद्ध में मैसूर का नेतृत्व किया। यह युद्ध अनिर्णीत रहा।

ग) **तीसरा युद्ध (1790-92 ई.) :** इस युद्ध में टीपू सुल्तान बड़ी मुश्किल से अपनी स्वतंत्रता बचा पाने में सफल हुआ।

घ) **चौथा युद्ध (1799 ई.) :** इस युद्ध में टीपू सुल्तान वीरगति को प्राप्त हुआ और अंग्रेज़ों ने निर्णायक जीत हासिल की। इस युद्ध के बाद अंग्रेज़ों ने मैसूर के आसपास के क्षेत्र पर अधिकार कर लिया तथा वाडियार वंश के एक बालक को मैसूर का शासक बनाकर उसके साथ सहायक संधि कर ली ताकि समय आने पर वह बचे हुए राज्य पर भी अपना अधिकार कर ले। कुछ प्रदेश हैदराबाद के निज़ाम को भी दे दिए गए।

चित्र-2. नाना फड़नवीस

मराठों के साथ युद्ध : मराठे दक्षिण भारत में भारत के सभी राज्यों में से शक्तिशाली राजा के रूप में उभरे तथा दूसरी ओर ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी यूरोपियन शक्तियों में सर्वश्रेष्ठ बनकर उभरी। इस प्रकार दोनों के बीच संघर्ष अवश्यंभावी हो गया था। अंग्रेज़ों और मराठों में भारत की सत्ता प्राप्त करने के लिए तीन युद्ध लड़े गए :

क) **पहला युद्ध (1785-92 ई.) :** यह लगभग 7 वर्ष तक चला, लेकिन बिना किसी फैसले के समाप्त हो गया।

ख) **दूसरा युद्ध (1803-06 ई.) :** नाना फड़नवीस की मृत्यु से पेशवा कमज़ोर हो चुका था और आपसी फूट तथा अंग्रेज़ों की कूटनीति के कारण इस युद्ध में पहले पेशवा उसके बाद सिंधिया, होल्कर, गायकवाड और भोंसले सभी पराजित हुए तथा कंपनी का विस्तार भारत के एक बड़े भू-भाग पर हो गया।

ग) **तीसरा युद्ध (1817-18 ई.) :** इस युद्ध में भी मराठे पराजित हुए और पूना को अंग्रेज़ी साम्राज्य में मिला दिया गया। शेष मराठा राज्य छोटी-छोटी रियासतें बनकर रह गए और कंपनी के अधीन हो गए।

क्या आप जानते हैं?

- मराठा शासक के प्रधान मंत्री को ही पेशवा कहा जाता था।
- नाना फड़नवीस अंतिम मराठा सरदार थे जिन्होंने मराठा शक्ति को संगठित रखा था।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

गतिविधि : दक्षिण से उत्तर तक विस्तार रखने वाले मराठे अंग्रेज़ों को पराजित करने में क्यों असफल रहे? कारणों का पता लगाइए।

अन्य युद्ध (सिक्ख और गोरखा) : मराठों की पराजय के बाद अंग्रेज़ी कंपनी का विस्तार उत्तरी भारत तक हो गया था। अब उन्होंने उत्तर भारत की शक्ति सिक्खों को 1845-46 ई. तथा 1848-49 ई. में दो युद्धों में हराकर उन पर भी अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। इसके पश्चात अंग्रेज़ों ने भारत के सीमावर्ती राज्यों को उचित-अनुचित तरीके अपनाकर अपने राज्य में मिला लिया। इस कड़ी में गोरखा और अफगानों का ब्रिटिश साम्राज्य में विलय शामिल है। अंग्रेज़ों द्वारा स्थानीय शक्तियों के विरुद्ध किए गए युद्ध से एक बात स्पष्ट होती है कि भारतीय स्थानीय शासक सैन्य दृष्टि से कमज़ोर नहीं थे। उनकी प्रमुख दुर्बलता उनके आपसी मतभेद एवं फूट थी। यह अंग्रेज़ों की कूटनीति का परिणाम था कि उन्होंने भारतीय सैनिकों से ही भारतीय राजाओं को पराजित किया।

सहायक संधि द्वारा

1798 ई. से 1805 ई. तक भारत में कंपनी के गवर्नर जनरल रहे लार्ड वेलेजली ने सहायक संधि द्वारा अनेक भारतीय राज्यों को ब्रिटिश साम्राज्य में मिलाया। यह संधि ब्रिटिश कंपनी एवं देशी राज्यों के बीच होती थी। इसके अनुसार संधि स्वीकार करने वाले राज्य को कंपनी सैनिक सहायता देती थी, बदले में राज्य निश्चित धन कंपनी को देता था। इसकी प्रमुख शर्तें इस प्रकार थीं:

1. देशी राज्य की विदेश नीति पर कंपनी का अधिकार रहेगा।
2. अंग्रेज़ों को छोड़कर किसी यूरोपियन को उस राज्य में स्थान नहीं दिया जाएगा।
3. देशी राज्य को अपने राज्य में कंपनी की सेना रखनी होगी तथा उसका खर्च धन अथवा राज्य के हिस्से के रूप में कंपनी को देना होगा।
4. देशी राज्य को राज्य में परामर्शदाता के रूप में अंग्रेज़ी रेजिडेंट रखना होगा।

इस सहायक संधि को सर्वप्रथम 1798 ई. में हैदराबाद के निज़ाम ने अपनाया, उसके बाद अवध, मैसूर, मराठों व कर्नाटक ने भी इस संधि को अपना लिया। इसे अपनाकर भारतीय राजा धीरे-धीरे अपना राज्य खो बैठे और ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारत में अपनी सर्वोच्चता स्थापित कर ली।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

लैप्स की नीति

1848 ई. में साम्राज्यवादी लॉर्ड डलहौजी भारत का गवर्नर जनरल बनकर आया। उसने अपने 8 वर्षीय शासन में ब्रिटिश साम्राज्य का विस्तार करने के लिए अनेक नीतियां अपनाई। उसने भारत में ब्रिटिश कंपनी के विस्तार के लिए 'लैप्स की नीति' का सहारा लिया। जिस समय में वह भारत आया उस समय भारत के कई राजाओं के संतान नहीं थी और वह बच्चा गोद लेने की बात सोच रहे थे। डलहौजी ने अंग्रेज़ों के अधीन राजाओं को बच्चा गोद लेने के लिए कंपनी से अनुमति लेने का आदेश निकाला। वास्तविक रूप से इन राज्यों को अनुमति नहीं दी गई। इस प्रकार संतानहीन राज्यों जैसे सतारा, नागपुर, झांसी, संभलपुर, जयपुर तथा उदयपुर आदि को अंग्रेज़ी राज्य में मिला लिया गया।

आओ याद करें :

1. भारत में आने वाली सर्वप्रथम यूरोपीय शक्ति पुर्तगाली थे।
2. 1510 ई. में पुर्तगालियों ने गोवा पर अधिकार किया।
3. पुर्तगालियों ने ब्रिटेन के राजकुमार चार्ल्स द्वितीय के साथ राजकुमारी कैथरीन का विवाह किया और मुंबई को दहेज में दिया था।
4. अंग्रेजों ने 1760 ई. में वांडीवाश के निर्णायक युद्ध में फ्रांसीसियों को हराया था।
5. बंगाल के नवाब मीर कासिम ने अपनी राजधानी मुर्शिदाबाद से मुंगेर स्थानांतरित की थी।
6. मैसूर के हैदर अली ने स्वतंत्र राज्य की स्थापना की उसकी 1782 ई. में मृत्यु हो गई।
7. वेलेजली ने सहायक संधि द्वारा हैदराबाद, अवध, मैसूर, कर्नाटक एवं मराठों को कंपनी के अधीन किया।
8. डलहौजी ने लैप्स की नीति के तहत सतारा, नागपुर, झांसी, संभलपुर, जयपुर, उदयपुर को अंग्रेजी साम्राज्य में विलय किया।

रिक्त स्थान भरो :

1. मराठा शासक के प्रधानमंत्री को .... कहा जाता था।
2. मैसूर राज्य पहले ....साम्राज्य का एक अंग था।
3. हम ....के नागरिकों को अंग्रेज़ कहते हैं।
4. सबसे पहले भारत छोड़कर जाने वाली यूरोपियन शक्ति .... थी।
5. झाँसी को ....को नीति के अंतर्गत ब्रिटिश साम्राज्य में मिलाया गया था।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

उचित मिलान कीजिए :

1.	बक्सर का युद्ध	क)	नाना फड़नवीस
2.	प्लासी की लड़ाई	ख)	मीर कासिम
3.	मराठा सरदार	ग)	वाडियार
4.	मैसूर का राजवंश	घ)	वांडीवाश
5.	निर्णायक फ्रांसीसी हार	ङ)	सिराजुद्दौला

आओ विचार करें :

1. यूरोपीय शक्तियों के आगमन से पहले भारत के विदेशी व्यापार की क्या स्थिति थी?
2. यूरोपीय शक्तियों द्वारा आरम्भ में तटीय क्षेत्रों में बस्तियां स्थापित करने के पीछे क्या कारण रहे होंगे?
3. भारतीय शासक संख्या, बल और स्थानीय परिवेश से परिचित होने के बावजूद भी यूरोपीय शक्तियों के विरुद्ध सफल नहीं रहे, कारणों पर चर्चा करें।
4. अंग्रेजों एवं मराठों के मध्य हुए युद्धों का वर्णन कीजिए।
5. भारत के इतिहास में प्लासी लड़ाई और बक्सर के युद्ध के महत्व का वर्णन कीजिए।

आओ करके देखें :

1. भारत के पूर्वी तट पर दो पुर्तगाली बस्तियों को मानचित्र पर इंगित करते हुए इनके बारे में संक्षेप में लिखिए।
2. भारतीय क्षेत्रों पर कब्जा करने के लिए अंग्रेजों को सहायक संधि और लैप्स की नीति जैसी नीतियों की जरूरत क्यों पड़ी? चर्चा कीजिए।
3. सांस्कृतिक एवं नैतिक दृष्टि से भारतीयों और यूरोपियनों में आप क्या अंतर देखते हैं? सूची तैयार कर चर्चा कीजिए।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

अध्याय

8

कम्पनी की शोषणकारी नीतियाँ व उनका विरोध

आओ जानें

- भारत की स्थिति।
- भारत में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी का आगमन।
- अंग्रेज़ों की व्यापारिक नीति।
- अंग्रेज़ों की शोषणकारी आर्थिक नीतियाँ।
- अंग्रेज़ों की शोषणकारी नीतियों का विरोध।

सोने की चिड़िया कहा जाने वाला भारत 18वीं शताब्दी तक दुनियाँ में विशेष स्थान रखता था। यहाँ का उच्च कोटि का सूती वस्त्र व रेशमी कपड़ा, नील, शक्कर, मसाले, औषधियाँ एवं बहुमूल्य रत्न किसी भी राष्ट्र को लालायित करने के लिए काफी थे। हर विदेशी राष्ट्र व्यापार करके उस पर अपना आधिपत्य जमाने को आतुर था। इसी उद्देश्य हेतु हमारे देश में यूरोप से कई कम्पनियाँ आई जैसे पुर्तगाली, डच, अंग्रेज़, डेनिश एवं फ्रांसीसी। इन यूरोपीय देशों की कम्पनियों के आगमन के दौरान भारत राजनीतिक दृष्टि से कमज़ोर तथा अनेक क्षेत्रीय राज्यों में विभक्त था। मुगलों की केन्द्रीय सता का अस्तित्व एक औपचारिकता मात्र था। इस संक्रमण काल के दौर में यूरोपियन कम्पनियाँ भारत की अव्यवस्थित राजनीति में रुचि लेने लगी और उनमें आपसी प्रतिस्पर्धा शुरू हो गई। इस प्रतिस्पर्धा में अंग्रेज़ विजयी रहे। उन्होंने 1600 ई. में 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' की स्थापना करके भारत में व्यापार आरम्भ किया। प्रारम्भ में कम्पनी के व्यापार से सोना-चाँदी भारत आया तथा भारत की समृद्धि में और वृद्धि होती चली गई। परन्तु 1757 ई. में प्लासी की लड़ाई में विजय के बाद व्यापारिक कम्पनीयाँ राजनैतिक सत्ता में परिवर्तित हो गई इसके बाद इस कम्पनीयो ने भारत में व्यापार, भू-राजस्व व धन के निकास जैसी ऐसी शोषणकारी नीतियाँ अपनाई जिनके कारण भारत सोने की चिड़िया कहलाने वाला समृद्ध देश कुछ वर्षों में ही दयनीय तथा कंगाल देश बनता चला गया।

अंग्रेज़ी राज का चरित्र : सुंदरलाल ने अपनी पुस्तक 'भारत में अंग्रेजी राज' में अंग्रेज़ी राज के कायम होने के तरीके के बारे में एक यूरोपियन विद्वान का उदाहरण देते हुए लिखते हैं कि, 'किसी भारतीय संत ने अपने देश के अंदर यूरोप निवासियों की तुलना दीमकों के साथ की है। आरम्भ में दीमकों के कार्य या तो अंधेरे में जमीन के नीचे से शुरू होते हैं या कम-से-कम दिखाई नहीं देती, किन्तु इन दीमकों का लक्ष्य निश्चित होता है और वे चुपचाप और अज्ञात उस लक्ष्य को पूरा करने में लगी रहती हैं। वन के हरे-भरे वृक्षों को भीतर ही भीतर खाकर उनके खोखले तनों में अपनी इमारतें खड़ी कर लेती हैं। उन इमारतों तक पास की और दूर की कड़ी मिट्टी की बामियों से आने-जाने के लिए वे अनेक गुप्त रास्ते बना लेती हैं। ये दीमकें हर चीज पर धावा बोलती हैं, हर चीज को खा जाती हैं, भीतर ही भीतर जड़ों को खोद डालती हैं, खोखला कर देती हैं और सब वीरान कर डालती हैं।

©BSEH Bhiwani
Not to be republished

कम्पनी की शोषणकारी आर्थिक नीतियाँ

व्यापारिक नीतियां : प्राचीन काल से ही भारत की समृद्धि विश्व भर में प्रसिद्ध थी तथा भारत के बने सामान की विश्व के हर कोने में मांग थी। जैसा की शुरुआत में बताया गया है यहां के गरम मसाले, वस्त्र और मलमल दुनिया में खूब बिकते थे। कम्पनी ने भी प्रारम्भ में भारतीय सामान को विदेशों में बेचकर खूब लाभ कमाया तथा भारत की समृद्धि को भी बढ़ाया। लेकिन 18वीं शताब्दी के मध्य अंग्रेज़ों की आर्थिक नीतियों में बदलाव आया, जिसके परिणामस्वरूप भारत की धन-सम्पदा का निरन्तर निष्कासन हुआ, परम्परागत उद्योग-धंधों का विनाश हुआ। कम्पनी की शोषणकारी व्यापारिक नीतियों का अध्ययन निम्नानुसार किया जा सकता है :

चित्र-1. अंग्रेज़ अधिकारी मुगल बादशाह से आज्ञापत्र प्राप्त करते हुए।

1757 ई. तक कम्पनी की व्यापारिक नीति : 1757 ई. तक ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी एक व्यापारिक कम्पनी थी। इसका मुख्य उद्देश्य भारत व पश्चिम के देशों के बीच व्यापार पर नियंत्रण रखना था तथा व्यापार से अधिकाधिक लाभ कमाना था। कम्पनी भारत से सूती वस्त्रों, रेशमी कपड़ों, गरम मसालों, मलमल, कीमती पत्थरों, अफीम, जरी गोटा इत्यादि खरीदकर इंग्लैण्ड व अन्य यूरोपीय देशों में बेच देती थी तथा इसके बदले भारत में सोना, चाँदी जैसी बहुमूल्य धातुएं वापस लाती थी। इस प्रकार भारत का निर्यात लगातार बढ़ रहा था जिससे भारत की समृद्धि में वृद्धि हुई।

1757 ई.-1813 ई. तक कम्पनी की व्यापारिक नीति : 1757 ई. तक व्यापार संतुलन भारत के पक्ष में था लेकिन 1757 ई. में प्लासी की लड़ाई के बाद कम्पनी व्यापारिक सत्ता से राजनीतिक सत्ता में परिवर्तित हुई जिससे व्यापारिक नीति में भी बदलाव आने लगा। भारत में पुरानी अर्थव्यवस्था को तोड़ा-मरोड़ा गया। सिंचाई व निर्माण कार्य नहीं किये गए। 1764 ई. के बक्सर के युद्ध के बाद कम्पनी को बंगाल, बिहार व उड़ीसा की दीवानी (कर एकत्र करने) का अधिकार मिल गया। भारत में अंग्रज़ों ने अपनी भूमि व्यवस्था को लागू किया, भूमि

चित्र-2. इंगलैण्ड के औद्योगिक विकास को दर्शाया गया है।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

व्यक्तिगत सम्पत्ति मानी जाने लगी तथा नई कर नीतियों के द्वारा भारतीय कारीगरों तथा शिल्पकारों को नष्ट कर दिया। अब कम्पनी ने अपनी राजनीतिक सत्ता का प्रयोग करके भारतीय शिल्पकारों से मनचाहे दाम पर सामान खरीदना शुरू कर दिया तथा व्यापारिक एकाधिकार भी प्राप्त कर लिया। उन्होंने बंगाल, बिहार व उड़ीसा से प्राप्त धन का प्रयोग भी भारतीय माल खरीदने के लिए शुरू कर दिया। इससे जहाँ एक ओर भारतीय दस्तकारों की स्थिति बिगड़ने लगी वहीं भारतीय व्यापारियों को भी हानि उठानी पड़ी तथा भारत से धन का निकास भी शुरू हो गया।

1813 ई. से 1857 ई. तक कम्पनी की व्यापारिक नीति : इंग्लैण्ड सरकार ने अपनी व्यापारिक नीति के अंतर्गत भारतीय सामान के आयात पर भारी सीमा कर लगाकर भारतीय सामान की मांग को कम करने का प्रयास किया। अब इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रांति हो चुकी थी तथा सामान हाथ की अपेक्षा मशीनों से बनने लगा था जो सस्ते के साथ-साथ मात्रा में अधिक भी था। इंग्लैण्ड के उद्योगपतियों के दबाव में आकर वहाँ की सरकार ने 1813 ई. के चार्टर एक्ट के अनुसार कम्पनी के व्यापारिक एकाधिकार को समाप्त करके स्वतंत्र व्यापार नीति का अनुकरण करना शुरू कर दिया तथा इंग्लैण्ड के व्यापारियों को भारत के साथ व्यापार की छूट दे दी। अब अंग्रेज़ व्यापारियों ने भारत से कच्चा माल जैसे कपास, रेशम इत्यादि खरीदना शुरू कर दिया तथा इससे अपने कारखानों में रेशमी, सूती, ऊनी कपड़ा तैयार करके भारत में बेचना शुरू कर दिया। यातायात व संचार के साधनों का विस्तार करके तैयार माल को भारत के आंतरिक भागों तक पहुँचा दिया। भारत अब कच्चे माल का निर्यातक व तैयार माल का आयातक देश बन कर रह गया।

जानने का प्रयास करें : कि भारत में कौन-कौन से देशों से व्यापारिक कम्पनी आई?

भू-राजस्व नीतियाँ : खेतीहर देशों में भूमि लोगों की आय का एक मुख्य स्रोत होती है। उस समय भारत भी एक कृषि प्रधान देश था। इसकी अधिकतर जनसंख्या कृषि पर निर्भर थी तथा कृषि से ही उसका जीवन यापन होता था। कृषि का एक भाग किसान को राजस्व अथवा लगान के रूप में सरकार या राजा को देना होता था। यही भाग भू-राजस्व, भूमिकर या लगान कहलाता था। 1765 ई. में लार्ड क्लाईव ने मुगल सम्राट से कम्पनी के लिए बंगाल, बिहार, उड़ीसा की दीवानी (भूमि कर एकत्र करने) का अधिकार प्राप्त करने के बाद अंग्रेज़ी प्रशासन ने भू-राजस्व व्यवस्था में महत्वपूर्ण बदलाव किए। इसका उद्देश्य अधिक-से-अधिक भू-राजस्व प्राप्त करना एवं भारत से कच्चे माल का निर्यात करना था। ईस्ट इंण्डिया कम्पनी के अधिकारी इस बात से अवगत थे कि भारत में कुल राजस्व का मुख्य भाग भू-राजस्व है। कम्पनी ने अधिक से अधिक भू-राजस्व प्राप्त करने की मुख्यत: तीन प्रणालियाँ - स्थायी बंदोबस्त, रैयतवाड़ी बंदोबस्त एवं महालवाड़ी बंदोबस्त शुरू की। उस समय कम्पनी की भारत में भूमि व्यवस्था के स्वरूप, कर-निर्धारण तथा कर संग्रह में एकरूपता नहीं थी। जिसके कारण अंग्रेज़ों की भूमि व्यवस्था के स्वरूप

को समझना मुश्किल लगता था। हॉल्ट मेकेंजी अंग्रेज़ों की भू-राजस्व व्यवस्था के बारे में कहते हैं कि 'वह जीवन भर भू-राजस्व व्यवस्था का अध्ययन करते रहे परन्तु उन्हें इसका जरा भी ज्ञान नहीं था।' उनकी भू-राजस्व प्रणालियाँ निम्नलिखित थी :

क) स्थायी बंदोबस्त : 1786 ई. में इंग्लैण्ड का एक जमींदार लार्ड कार्नवालिस भारत में कम्पनी का गवर्नर जनरल बनकर आया। उसने कम्पनी की आय निश्चित करने के लिए 1790 ई. में दस वर्षीय बंदोबस्त करके जमींदारों को भूमि का स्वामी स्वीकार किया। 1793 ई. में इस बंदोबस्त को स्थायी बंदोबस्त घोषित कर दिया। इसे बंगाल, बिहार, उड़ीसा, बनारस व उत्तरी मद्रास के कुछ जिलों अर्थात् ब्रिटिश भारत के 19 प्रतिशत भाग पर लागू किया गया था। जमींदार को भूमि का स्वामी मान लिया गया। भूमिकर में 9/10 हिस्सा कम्पनी का व 1/10 हिस्सा जमींदार का रखा गया। इस बंदोबस्त से कम्पनी को खूब लाभ हुआ। एक तो उन्हें वफादार जमींदार वर्ग मिल गया दूसरी ओर आय निश्चित हो गई तथा आय अधिक मात्रा में हुई लेकिन भारतीय कृषि व काश्तकारों को घाटा झेलना पड़ा। इसके अन्तर्गत कर की मात्रा बहुत अधिक थी। जमींदारों को एक निश्चित तारीख तक एक तयशुदा भू-राजस्व जमा कराना होता था (जिसे सूर्यास्त का नियम कहा जाता था) और न दे पाने पर जमींदारी छिन जाती थी। इसके कारण गैरहाजिर जमींदार वर्ग उत्पन्न हुआ। जिससे कृषि की अवनति हुई व किसानों का अधिकाधिक शोषण हुआ।

चित्र-3. स्थाई बंदोबस्त के संस्थापक लार्ड कार्नवालिस

चित्र-4. अंग्रेजों की लगान वसूल नीति को दर्शाया गया है।

ख) रैय्यतवाड़ी व्यवस्था : 1820 ई. में सर थामस मुनरो ने मद्रास प्रेजीडेंसी में भूमि कर की जो व्यवस्था लागू की, उसे 'रैयतवाड़ी व्यवस्था' कहा जाता है। इस व्यवस्था को मद्रास के तुरंत बाद बंबई, असम, सिंध, कुर्ग, बरार, अंडमान निकोबार इत्यादि ब्रिटिश भारत के लगभग 51 प्रतिशत भाग पर लागू किया गया। इसे रैय्यतवाड़ी व्यवस्था इसलिए कहा जाता है क्योंकि इस व्यवस्था में समझौता सीधा रैयतों अर्थात् किसानों के साथ किया गया न कि जमींदारों के साथ। दक्षिण भारत में वैसे भी बड़ी-बड़ी भूमियों वाले जमींदार नहीं थे। इस व्यवस्था के

चित्र-5. रैय्यतवाड़ी व्यवस्था के संस्थापक थॉमस मुनरो।

©BSEH Bhiwani
Not to be republished

अन्तर्गत भू-राजस्व 40-55 प्रतिशत तक की मात्रा निश्चित की गई। यह मात्रा स्थायी रूप से निश्चित नहीं थी।

बीस से तीस वर्षों के पश्चात् इसे पुनः निर्धारित किया जा सकता था। भूमि कर न दे सकने वाले किसानों की भूमि को नीलाम किया जा सकता था। कम्पनी के लिए कर लगाने वाले कर्मचारी किसानों का खूब शोषण करते थे। कर की मात्र बहुत अधिक थी। सरकार की ओर से किसान को यह स्वतंत्रता थी कि कर चुकाने के लिए वह अपनी जमीन दूसरे किसानों को खेती के लिए दे सकता था, उसे गिरवी रख सकता या बेच भी सकता था। दक्षिण के कम उपजाऊ क्षेत्र वाले किसान इस कर को चुकाने में असमर्थ थे, जिसके फलस्वरूप शीघ्र ही उनकी भूमि नीलाम होने लगी। किसान साहूकारों व महाजनों के चंगुल में फंस गये। भयानक अकाल के कारण बडी संख्या में किसान भूख व मृत्यु का शिकार हो गए।

रैय्यत : किसान को कहा जाता है। इसलिए किसानों के साथ अंग्रेज़ों ने जो बंदोबस्त किया उसे रैयतवाड़ी बंदोबस्त कहा जाता है।

ग) महालवाड़ी व्यवस्था : भारत में भू-राजस्व व्यवस्था की तीसरी महत्वपूर्ण भूमि-कर व्यवस्था महालवाड़ी व्यवस्था थी। यह व्यवस्था संयुक्त प्रांत के कुछ भाग, मध्य प्रांत तथा पंजाब में अर्थात् ब्रिटिश भारत के लगभग 30 प्रतिशत भाग पर लागू की गई। महालवाड़ी व्यवस्था 'महाल' अर्थात् सम्पूर्ण गाँव के साथ सामूहिक रूप से की जाती थी। इसे गाँव के अनुसार व्यवस्था भी कहा जाता था। इस प्रणाली में कम्पनी ने जमींदार अथवा किसान से समझौता नहीं किया अपितु समूचे गाँव से सामूहिक रूप से समझौता किया। इस व्यवस्था में सारा गाँव अथवा उसके प्रतिनिधि उस महाल अथवा गाँव के लिए निश्चित किए गये भूमि कर को अदा करने के लिए जिम्मेदार होता था। गाँव की ओर से मुखिया अथवा नम्बरदार समझौते पर हस्ताक्षर करते थे। इस व्यवस्था के प्रारम्भ में उपज का 2/3 भाग भूमि कर के रूप में निश्चित किया गया यद्यपि बाद में इसे घटाकर 1/2 निर्धारित कर दिया गया। भूमि का स्वामी सम्पूर्ण गाँव को माना गया। कर की मात्रा अधिक थी जिससे किसानों की स्थिति खराब हो गई। यह व्यवस्था तीस वर्षों के लिए निश्चित की गई तथा कुछ भागों में बीस वर्षों की अवधि निर्धारित हुई।

चित्र-6. महालवाड़ी व्यवस्था का चित्रण किया गया है।

गतिविधि : कम्पनी के शासन के दौरान भू-राजस्व व्यवस्था कैसी थी और किसानों का शोषण कैसे होता था?

©BSEH Bhiwani
Not to be republished

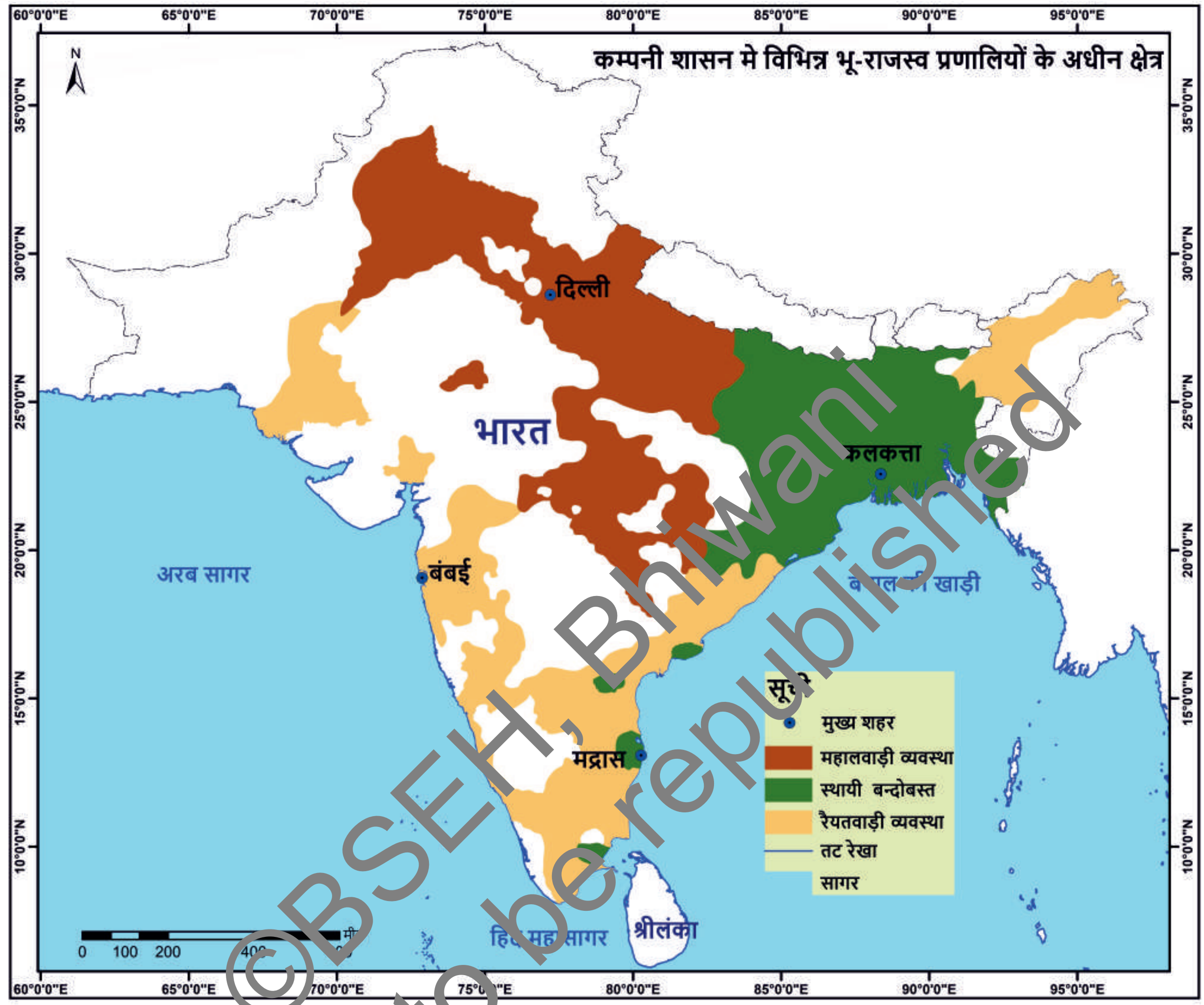

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

अंग्रेज़ों ने भारत के 19 प्रतिशत भू-भाग पर स्थाई बंदोबस्त, 51 प्रतिशत भू-भाग पर रैयतवाड़ी बंदोबस्त और 30 प्रतिशत भू-भाग पर महालवाड़ी बंदोबस्त को अपनाया था।

घ) धन का निकास : ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी की आर्थिक नीतियों के परिणामस्वरूप भारत के धन का एक बड़ा भाग ब्रिटेन को जाता रहा जिसके बदले में भारत को कुछ भी प्राप्त नहीं होता था। इसी लूट को आर्थिक निकास अथवा धन का निकास कहा जाता था। आर्थिक निकास भारत में अंग्रेज़ी शासन की प्रमुख विशेषता रही। अंग्रेज़ों से पहले भारत आए विदेशी स्थायी रूप से यहीं बस गये।

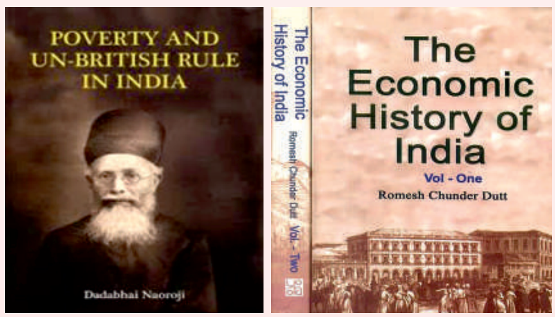

चित्र-7. दादाभाई नौरोजी और रमेश चन्द्र दत्त दोनो ने ही धन निकास की आलोचना की थी।

उन्होंने भूमि कर व अन्य करों से प्राप्त धन को यहीं खर्च किया। लेकिन कम्पनी द्वारा स्थापित ब्रिटिश शासन का स्वरूप हमेशा विदेशी रहा तथा भारत का 1757 ई. से 1947 ई. तक निरंतर आर्थिक शोषण करता रहा। आर्थिक नीति के सिद्धांत की वैज्ञानिक व्याख्या राष्ट्रवादी नेता दादाभाई नौरोजी ने अपनी पुस्तक 'पावर्टी एण्ड अनब्रिटिश रूल इन इण्डिया' (1876 ई.) में की तथा इसे भारत की दरिद्रता का मुख्य कारण माना। भारत से धन वेतनों, युद्धों पर खर्चों, गृह प्रभार, सेना पर खर्चों के रूप में इंग्लैण्ड को लाभ पहुँचाता रहा तथा भारत को इन सब खर्चों के बदले कुछ प्राप्त नहीं हुआ। इसके फलस्वरूप भारत निरंतर दरिद्र होता गया, वहीं दूसरी ओर इंग्लैण्ड निरंतर समृद्ध व विकसित देश बन गया। धन निष्कासन के विषय पर अंग्रेज़ अधिकारी जॉन सुलीवन ने भी माना था कि हमारी प्रणाली एक ऐसे स्पंज के रूप में कार्य करती जो गंगा के किनारों से प्रत्येक अच्छी वस्तु सोख लेती है तथा टेम्स के किनारों पर निचोड़ देती है।

कम्पनी की शोषणकारी नीतियों के प्रभाव

अंग्रेज़ों की आर्थिक नीतियों के कारण भारत में ग्रामीण अर्थव्यवस्था का पतन आरम्भ हुआ, जिसके कारण भारत में प्रत्येक वर्ग का शोषण हुआ। उनकी व्यापारिक एवं भू-राजस्व नीतियों का मुख्य उद्देश्य भारत के संसाधनों का अधिक से अधिक दोहन करना था जिससे इंग्लैण्ड का औद्योगिक विकास किया जा सके। इन नीतियों के भारत व इंग्लैण्ड पर निम्नलिखित प्रभाव पड़े :

हस्तशिल्प उद्योगों का पतन : कम्पनी के शासन से पूर्व भारत के हस्तशिल्प उद्योग व कलाकृतियाँ विकसित अवस्था में थे तथा इन उद्योगों में तैयार सामान विश्व में खूब बिकता था। ढाका की मलमल (कपड़ा) की दुनिया में बहुत मांग थी लेकिन कम्पनी की शोषणकारी आर्थिक नीतियों ने भारतीय हस्तशिल्प उद्योग को नष्ट कर दिया। अंग्रेज़ों ने भारत में बने सामानों पर इंग्लैण्ड में भारी कर लगाया तथा अपने मुनाफे के लिए भारत में अपनी वस्तुओं के दाम कम किए। भारतीय देशी राज्यों को अधिकार में करने के बाद अंग्रेज़ों ने आयात-निर्यात, चुंगी तथा अन्य कर लगाकर भारतीय उद्योग तथा दस्तकारी का विनाश कर दिया। अतः भारत का शोषण भारतीय पूंजी द्वारा किया गया शोषण था।

गतिविधि : अपने आस-पड़ोस में देखें कि कौन-कौन से हस्तशिल्प उद्योग प्रचलित हैं?

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

अनौद्योगिकीकरण: अठारहवीं-उन्नीसवीं सदी में विश्व के सभी प्रमुख देशों में कृषि व औद्योगिक क्रांतियाँ हुईं तथा सभी देशों में आधुनिक उद्योगों का विकास हुआ। लेकिन भारत की ब्रिटिश सरकार ने न तो भारतीय सामान को संरक्षण दिया और न ही भारतीय व्यापारियों को सुविधाएँ दी। इसके अतिरिक्त भारत की परम्परागत आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था को भी धीरे-धीरे पतन की ओर पहुँचा दिया। भारत इंग्लैण्ड के लिए आयातित देश बनकर रह गया। भारतीय बाजार धीरे-धीरे विदेशी सामानों से भरपूर हो गये। यहाँ के उद्योग-धंधे ठप्प हो गये। इस प्रकार सरकार का मुख्य उद्देश्य भारत की बजाय ब्रिटेन के व्यापारियों व उद्योगपतियों को संरक्षण देना था जिससे भारत का अनौद्योगीकरण हुआ।

भारत की निर्धनता : अंग्रेज़ों की शोषणकारी आर्थिक नीतियों के फलस्वरूप भारत का अधिक से अधिक शोषण हुआ तथा भारत से धन का एक बड़ा भाग इंग्लैण्ड चला गया। इस भाग के बदले भारत को कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ। इस आर्थिक दोहन अथवा धन के निकास से भारत निरंतर निर्धन होता चला गया। वर्तमान में भारत की दुर्दशा व गरीबी के पीछे भी औपनिवेशिक दोहन ही मुख्य कारण है।

चित्र-8. भारत की गरीबी का चित्रण

इंग्लैण्ड का विकास : भारतीय धन के निकास से ही इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रांति हुई। भारत से कच्चे माल का इंग्लैण्ड को निर्यात व इंग्लैण्ड से तैयार माल के भारत में आयात से इंग्लैण्ड के उद्योगों को काफी लाभ मिला। भारत में कच्चे माल को सस्ती दर में खरीदकर भारी मुनाफा कमाया जाने लगा। भारत के कपड़ा, बर्तन, लोहा व कांच उद्योग को बर्बाद कर उनमें लगे शिल्पियों को उजाड़ दिया गया।

भारतीय व्यापार को हानि : कम्पनी के शासन से पूर्व भारत का व्यापार विकसित अवस्था में था तथा इस व्यापार पर भारतीय व्यापारियों का नियंत्रण था। कम्पनी के शासन की स्थापना के बाद अंग्रेज़ों ने भारतीय व्यापार व व्यापारियों पर विभिन्न तरह के प्रतिबंध लगा दिए तथा अंग्रेज़ी व्यापारियों का पक्ष लेना शुरू कर दिया। इससे भारतीय व्यापारियों को आर्थिक हानि होने लगी तथा वे बर्बाद हो गए। इसके साथ-साथ भारतीय व्यापार को भी हानि होने लगी तथा व्यापार संतुलन जो पहले भारत के पक्ष में था वह भी बिगड़ गया।

कृषि का पिछड़ापन : कम्पनी ने भारत में शोषणकारी भू-राजस्व नीतियाँ अपनाई जिससे कृषि के उत्पादन में गिरावट आई। जमींदार अधिकतर शहरों में निवास करते थे। उनकी कृषि सुधार में कोई रुचि नहीं थी। किसान

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

कृषि उत्पादन बढ़ाने में इसलिए रुचि नहीं लेते थे क्योंकि उनको पता था कि उत्पादन का बड़ा हिस्सा कम्पनी व जमींदार के पास चला जाएगा। इसलिए कृषि में गतिहीनता व पिछड़ापन आया।

किसानों की दरिद्रता : अंग्रेज़ों की भू-राजस्व नीतियों से किसानों की स्थिति बिगड़ने लगी। भू-राजस्व की मात्रा इतनी अधिक थी कि किसान साहूकारों व महाजनों के चंगुल में फँस गए। किसान, ऋणग्रस्तता के शिकार हुए। दूसरी ओर अकाल व बाढ़ के समय भी कम्पनी कठोरता से कर वसूल करती थी, जिससे किसानों की स्थिति दयनीय होती चली गई। अधिकतर किसानों ने अपनी भूमि बेच दी व खेतीहर मजदूर बन गये।

चित्र 9. किसानों के शोषण को दर्शाता एक चित्र

औपनिवेशिक जरूरतों के लिए रेलों व सड़कों का विकास : कम्पनी ने अपनी सुविधा एवं लाभ के लिए भारत में यातायात के आधुनिक साधनों जैसे रेलों व सड़कों का विकास किया। रेलों व सड़कों का विकास अंग्रेज़ों ने अपनी औपनिवेशिक, आर्थिक व प्रशासनिक जरूरतों को पूरा करने के लिए किया। दिल्ली से कलकत्ता तक के शेरशाह सूरी मार्ग को पक्का करवाया गया तथा इसका नाम 'ग्रांड ट्रंक रोड' रखा गया। कई प्रमुख नगरों को सड़कों से जोड़ा गया। नगरों को बंदरगाहों से भी सड़क मार्ग द्वारा जोड़ा गया तथा सार्वजनिक कार्य विभाग (पी. डब्ल्यू. डी.) की स्थापना की गई। इसी तरह रेलों का विकास इसलिए किया गया ताकि भारत के आंतरिक भागों से कच्चा माल आसानी से बंदरगाहों तक पहुँचाया जा सके तथा फिर तैयार माल इन बंदरगाहों से पुनः भारत के आंतरिक हिस्सों तक पहुचाया जा सके।

क्या आप जानते है?

भारत में लार्ड डलहौजी द्वारा शुरू की गई रेल व्यवस्था का उद्देश्य भारत के आंतरिक भाग से बहुमूल्य वस्तुओं को समुद्री तट पर ले जाकर लंदन ले जाना था।

©BSEH Bhiwani
Not to be republished

कम्पनी की शोषणकरी नीतियों का प्रतिरोध

1757 ई. से 1857 ई. के बीच कम्पनी की शोषणकारी नीतियों ने भारतीय किसानों, हस्तशिल्पियों एवं व्यापारियों को बर्बाद कर दिया तथा यहाँ के परम्परागत आर्थिक एवं सामाजिक व्यवस्था को भी बर्बाद कर दिया। इस कारण से इन सभी वर्गों ने कम्पनी-शासन का विरोध करना शुरू कर दिया। 1757 ई. से 1857 ई. तक शायद ही ऐसा कोई वर्ष गया होगा जिसमें कम्पनी के शासन के विरुद्ध विद्रोह या बगावत न हुई हो। 1857 ई. में तो भारतीय जनमानस के सभी वर्गों ने मिलकर अंग्रेज़ी कम्पनी के विरुद्ध एक ऐसा विस्तृत स्वतंत्रता संघर्ष छेड़ा जिसने अंग्रेज़ी शासन की चूलें हिला दी। कम्पनी की शोषणकारी नीतियों के प्रतिरोध का अध्ययन निम्नानुसार किया जा सकता है :

किसानों के विद्रोह : ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अपनी आय में वृद्धि के लिए मालगुजारी संबंधी सुधारों ने भारत के ग्रामीण समाज को बुनियादी तौर पर प्रभावित और परिवर्तित किया। इस कर की उगाही के लिए किसानों पर विभिन्न प्रकार के अत्याचार किए जिससे भारत के अलग-अलग हिस्से के किसानों ने विद्रोह कर दिए। बंगाल में संन्यासी विद्रोह, चुआर विद्रोह, रंगपुर विद्रोह, उड़ीसा में गंजम विद्रोह, हरियाणा में जाटों का विद्रोह, गुजरात का कोली विद्रोह, महाराष्ट्र का रामोसी विद्रोह, मैसूर व गारो के पागलपंथी विद्रोह आदि किसान विद्रोह थे। इन सभी विद्रोहों का कारण कम्पनी की अत्याचारपूर्ण शोषणकारी नीतियाँ थी। इन विद्रोहों को दबाने में कम्पनी को एड़ी-चोटी का जोर लगाना पड़ा। अपने आधुनिक संसाधनों से अंग्रेज़ इन विद्रोहों को दबाने में तो सफल रहे लेकिन किसानों व कारीगरों के मन में ज्वाला सुलग रही थी जो कभी भी भड़क सकती थी।

वनवासियों एवं जनजातियों का प्रतिरोध : अंग्रेज़ों की शोषणकारी नीतियों से वनवासियों में भी असंतोष पनपने लगा। अंग्रेज़ अधिकारी व कम्पनी के वफादार जमींदार वनवासी व जनजातीय लोगों का निरंतर शोषण करते थे तथा उनके जंगलों का दोहन करने लगे थे। कम्पनी की भू-राजस्व नीतियों से भी आदिवासी असंतुष्ट थे, रही सही कसर कम्पनी के कर्मचारियों व स्थानीय जमींदारों के अत्याचारों ने पूरी कर दी। वनवासी इतने परेशान हो गये कि उनके पास हथियार उठाने के अतिरिक्त कोई और रास्ता नहीं बचा। भारत के विभिन्न भागों में अंग्रेज़ी शासन का प्रतिरोध होने लगा। 1788-1790 ई. के बीच बंगाल में वनवासियों ने विरोध का झण्डा बुलंद किया। इसी तरह से कोल, खासी, भील इत्यादि ने आधुनिक हथियारों से सुसज्जित अंग्रेजी सेना के विरुद्ध अपने परम्परागत हथियारों से विद्रोह कर दिया। सबसे भयंकर विद्रोह 1855-1856 ई. में छोटा नागपुर के सन्थालों ने सिद्धू व कान्हों के नेतृत्व में किया। यह विद्रोह इतना भयंकर था कि अंग्रेज़ों को इसे दबाने में आठ महीने का समय लगा। वनवासियों के विद्रोह उनकी स्वतंत्रता में अंग्रेज़ी कम्पनी के हस्तक्षेप एवं कम्पनी की शोषणकारी नीतियों के फलस्वरूप उत्पन्न हुए थे। यद्यपि अंग्रेज़ों ने इनका कठोरता से दमन कर दिया लेकिन

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

स्वतंत्रता की ज्वाला इनके भीतर दहकती रही।

शिल्पकारों एवं कारीगरों का प्रतिरोध : ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने सत्ता प्राप्ति के बाद शोषणकारी व्यापारिक नीतियाँ अपनाईं। प्रारम्भ में भारतीय शिल्पकारों एवं कारीगरों से मनचाहे मूल्य पर सामान खरीदा जिससे कारीगरों को आर्थिक हानि झेलनी पड़ी। औद्योगिक क्रांति के बाद अंग्रेज़ों ने भारत में इस तरह के नियम बनाये जिनसे भारतीय उद्योगों का ह्रास किया जा सके तथा इंग्लैण्ड में तैयार माल की खपत हो सके। 1769 ई. में कम्पनी ने बंगाल में कच्चे रेशम की पैदावार को बढ़ावा दिया परन्तु सिल्क से तैयार माल पर प्रतिबन्ध लगाये। इसी प्रकार 'तटकर नीति' तथा 'आंतरिक चुंगी व्यवस्था' को तैयार करते समय ब्रिटिश हितों को प्रमुखता दी गई थी। अत: कम्पनी के विभेदकारी कानूनों से भारतीय हस्तकलाएं नष्ट हो गईं और इनका स्थान ब्रिटिश सामग्री ने ले लिया था। अब उनके अंदर असंतोष पनपने लगा तथा उन्होंने विभिन्न विद्रोहों में बढ़-चढ़कर भाग लेना शुरू कर दिया। 1770-1805 ई. के बीच बुनकरों, रेशम के कारीगरों व नमक के कारीगरों ने अंग्रेज़ी कम्पनी के विरुद्ध संघर्ष किया। इस संघर्ष को कई बार अन्य वर्गों का भी सहयोग मिला।

जमींदारों एवं राजाओं के प्रतिरोध : कम्पनी की शोषणकारी नीतियों से केवल किसान, आदिवासी एवं कारीगर ही असंतुष्ट नहीं थे अपितु अंग्रेज़ों की भू-राजस्व एवं व्यापारिक नीतियों से जमींदार एवं देशी राजा भी उतने ही अप्रसन्न थे। अंग्रेज़ों ने भारत का अधिक से अधिक दोहन करने के उद्देश्य से ही यहाँ की सत्ता पर नियंत्रण किया। कम्पनी ने भारतीय राजाओं की स्वतंत्रता छीन ली। उन्होंने दीवानी का अधिकार प्राप्त करके राजाओं के आर्थिक प्रबंधन पर नियंत्रण कर लिया जिससे देशी राजाओं में बेचैनी बढ़ने लगी। वहीं दूसरी ओर भू-राजस्व नीतियों से नए-नए जमींदारों को भूमि के ठेके दिए जिससे पुराने जमींदार नाराज हो गये। इन जमींदारों ने कम्पनी के विरुद्ध किसानों व कारीगरों के साथ मिलकर विद्रोह का बिगुल बजा दिया। मेदिनीपुर (1766-1767 ई.), धूलभूमि (1766-1767 ई.), विशाखापट्टनम (1794 ई.), पयस्सी राजा (1796-1805 ई), वजीर अली (1799 ई.), गंजम का संघर्ष (1800-1805 ई.), चेंरो का संघर्ष (1800 ई.), बगड़ी का नायक विद्रोह (1806-1816 ई.), बुंदेलखण्ड व बघेलखण्ड का विद्रोह (1808-1812 ई.), हाथरस की चुनौती (1817 ई.) इत्यादि। ये सभी इसी तरह के विद्रोह एवं संघर्ष थे जिनमें जमींदारों एवं राजाओं ने अपनी रियासतों एवं जागीरों के शोषण के बारे में आवाज उठाई।

1857 ई. का महान स्वतंत्रता संग्राम : 1757 ई. की प्लासी की लड़ाई के परिणामस्वरूप बंगाल में अंग्रेजी कम्पनी ने ब्रिटिश राज्य की नींव रखी। 1757-1856 ई. के इन सौ वर्षों के दौरान कम्पनी ने सम्पूर्ण भारत में प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से अपनी सत्ता व सर्वोच्चता स्थापित कर ली। इस समय के दौरान जैसे-जैसे कम्पनी का राज्य विस्तार होता गया वैसे-वैसे देश के प्रत्येक वर्गों (शासकों, सामंतों, कारीगरों, किसानों व शिल्पकारों)

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

में असंतोष की भावनाएं बढ़ती गई। 1857 का संग्राम राष्ट्रवाद की भावनाओं से ओत-प्रोत था। संग्राम का परम लक्ष्य भारत को अंग्रेज़ी राज से मुक्त कराना तथा उसे स्वतंत्र एवं संप्रभु राष्ट्र के रूप में स्थापित कराना था। भारत में अंग्रेज़ों ने जो आर्थिक एवं राजनीतिक नीति अपनाई वह ब्रिटिश हितों को ध्यान में रखकर बनाई गई थी, जिसके कारण भारत के परम्परागत हस्तशिल्प उद्योग नष्ट हो गए थे। अंग्रेज़ों के द्वारा प्रचलित तीनों भू-राजस्व व्यवस्थाएँ भारत की परम्परागत प्रथाओं के अनुकूल नहीं थी जिससे कृषि व किसानों की दशा दिन-प्रतिदिन गिरती गई। अंग्रेज़ों ने विभिन्न माध्यमों से भारतीय धन का निष्कासन किया, जिसके कारण भारत में गरीबी बढ़ती गई। अंग्रेज़ों की इस शोषणकारी नीति के विरुद्ध हर वर्ग (आदिवासी, किसान, शिल्पकार, जमींदार और शासक) में असंतोष व्याप्त था।

पाठ का सार

1. भारत को सोने की चिड़िया यहाँ की धन सम्पदा, समृद्धि एवं आत्मनिर्भरता के कारण कहा जाता था।
2. भारत में समुद्री मार्ग से पहुँचने वाला प्रथम यूरोपियन व्यक्ति वास्को-डी-गामा था, जो 1498 ई. में कालिकट पहुँचा था।
3. 1757 ई. में प्लासी का युद्ध व 1764 ई. में बक्सर का युद्ध लड़े गये।
4. लार्ड डलहौजी की विलय की नीति ने अंग्रेज़ों का भारत में राजनीतिक विस्तार किया।
5. 1765 ई. से 1947 ई. तक अंग्रेज़ों ने भारत का निरंतर आर्थिक, राजनीतिक विस्तार दिया।
6. भारत में 18 वीं शताब्दी को पुनर्जागरण का काल भी कहा जाता है।
7. भारत में लागू की गई भूमि बंदोबस्त भारतीयों के लिए नरक का द्वार बनी।
8. भारत में भारतीय संसाधनों से ही भारतीयों का शोषण करके असहाय बना दिया गया था।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

अतः अंग्रेज़ों ने जहाँ देश को आर्थिक रूप से पिछड़ा व बर्बाद कर दिया, वहीं उन्होंने स्वयं राजनीतिक शक्तियाँ भी प्राप्त की। अंग्रेज़ों की जो भी नीति होती थी वह पूर्णरूप से अंग्रेज़ों के लाभ के लिये ही होती थी। आर्थिक रूप से समृद्ध राष्ट्र को इस प्रकार निचोड़ दिया गया जैसे हाड़-मास का पिंजर हो अर्थात् देश को प्रत्येक दृष्टि से खोखला कर दिया गया। निरन्तर शोषण के कारण भारतीयों ने विरोध करना शुरू किया और यही विरोध धीरे-धीरे जन आक्रोश बना।

उपयोगी शब्द :

धन-निकास, रैय्यत, जोतदार, अकाल।

आओ याद करें :

1. ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना 1600 ई. में लंदन में हुई।
2. क्लाइव ने 12 अगस्त, 1765 ई. को इलाहाबाद की संधि के अंतर्गत मुगल सम्राट शाह आलम द्वितीय से बंगाल, बिहार व उड़ीसा की दीवानी का अधिकार प्राप्त किया।
3. कार्नवालिस ने 1793 ई. में बंगाल में स्थाई बंदोबस्त लागू किया।
4. थॉमस मुनरो ने मद्रास में रैयतवाड़ी व्यवस्था को लागू किया।
5. 'पॉवर्टी एंड अनब्रिटिश रूल इन इंडिया' नामक पुस्तक में राष्ट्रवादी नेता दादाभाई नौरोजी ने धन निष्कासन का सिद्धांत प्रतिपादित किया।
6. इंग्लैंड सरकार ने 1813 ई. के चार्टर एक्ट के अनुसार ईस्ट इंडिया कंपनी के व्यापारिक एकाधिकार को समाप्त करके स्वतंत्र व्यापार करने की नीति को प्रचारित किया।
7. भारत में पहली रेल लॉर्ड डलहौजी के समय में मुंबई से थाने के बीच चलाई गई।
8 1855-56 ई. में छोटा नागपुर के संथालों ने सिद्धू व कान्हों के नेतृत्व में अंग्रेजों के विरुद्ध भयंकर संघर्ष किया।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

रिक्त स्थान भरो :

1. अंग्रेज़ों ने भारत में ...., ... और .... भू-राजस्व नीति अपनायी थी।
2. धन निकास के ....और ....साधन थे।
3. भारत में अंग्रेज़ों की शोषणकारी नीति के कारण बार-बार .... आए।
4. 1857 भारत का पहला .... संग्राम था।
5. प्लासी का युद्ध .... में लड़ा गया।

मिलान करें :

1.	रैय्यत	अ)	दादाभाई नौरोजी
2.	धन निकास	ब)	इंग्लैण्ड
3.	औद्योगिक क्रांति	स)	रैयतवाड़ी
4.	बक्सर का युद्ध	द)	1764 ई.

आइए विचार करें :

1. भारत में कम्पनी राज में प्रचलित विभिन्न भू-राजस्व व्यवस्था के क्षेत्रों के बारे में बताइए।
2. धन निकास के साधनों को जानें।
3. कम्पनी राज में अकाल के कारण जानें।
4. भारतीय शिल्पकारों एवं कारीगरों के अंग्रेजों से प्रतिरोध के मुख्य कारणों का वर्णन कीजिए।
5. स्थाई बन्दोबस्त के गुण एवं दोषों का वर्णन कीजिए।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

आओ करके देखें :

1. यदि इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रांति न हुई होती तो अंग्रेजों की व्यापारिक नीति भारत में किस प्रकार की होती?
2. आपके विचार से वनवासियों एवं जन-जातियों ने अंग्रेज़ों का प्रतिरोध क्यों किया?
3. अंग्रेज़ों की भू-राजस्व प्रणालियों ने भारतीय कृषि को पूर्ण रूप से तबाह किया था। इस पर अपने विचार प्रस्तुत कीजिए।

अध्याय

9

1857 ई. की महान क्रान्ति

आओ जानें

आपने पिछले अध्याय में कम्पनी की भारत में शोषणकारी नीतियों एवं भारतीयों द्वारा इन नीतियों के प्रारम्भिक प्रतिरोध का अध्ययन किया है। इस अध्याय में 1857 ई. की महान क्रान्ति के निम्न मुख्य बिन्दुओं पर चर्चा करेंगे:

- 1857 ई. की महान क्रान्ति के मूलभूत कारण
- 1857 ई. की महान क्रान्ति की प्रमुख घटनाएं
- 1857 ई. की महान क्रान्ति के स्वरूप एवं महत्व

मई 1857 ई. की महान क्रान्ति भारतवर्ष के इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना है। इस वर्ष भारतीयों ने ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी के विरुद्ध 'स्वतन्त्रता की पहली लड़ाई' लड़ी। क्रान्ति के फलस्वरूप भारतीय जनमानस में यह भावना प्रबल हुई कि अंग्रेज़ अजेय नहीं हैं। ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना 1600 ई. में हुई थी। कम्पनी का मुख्य उद्देश्य व्यापार करना था। 1757 ई. में प्लासी की लड़ाई एवं 1764 ई. में बक्सर की लड़ाई में विजय प्राप्त करने के पश्चात ईस्ट इण्डिया कम्पनी एक व्यापारिक कम्पनी के स्थान पर राजनीतिक शक्ति के रूप में उभर कर सामने आई। अंग्रेज़ों ने 1757 ई. से 1857 ई. तक भारत में जो राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक नीतियां अपनाई, उनसे भारतीय जनता में असंतोष फैल गया, जिसके फलस्वरूप भारतीयों ने 1857 ई. में अंग्रेज़ों के विरुद्ध हथियार उठा लिए। इंग्लैण्ड में इसे बहुत सनसनीपूर्ण, अविश्वसनीय तथा आश्चर्यजनक घटना माना गया। प्रसिद्ध क्रान्तिकारी वीर सावरकर ने इस संघर्ष को 'भारतीय स्वतन्त्रता का प्रथम संग्राम' की संज्ञा दी है।

चित्र-1. विनायक दामोदर सावरकर

विनायक दामोदर सावरकर पहले ऐसे भारतीय थे, जिन्होंने 1857 ई. की क्रान्ति का इतिहास लेखन किया है। वीर सावरकर ने अपनी पुस्तक 'द इण्डियन वार ऑफ इण्डिपेण्डेंस' में 1857 ई. की क्रान्ति को भारतीयों की ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध पहली लड़ाई बताया है। इस पुस्तक का प्रभाव इतना जबरदस्त था कि ब्रिटिश शासन के अन्त तक यह निषिद्ध रही।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

ब्रिटेन के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ बेंजामिन डिज़रैली और लार्ड एलनबैरो ने इसे महान विपत्ति एवं राष्ट्रीय विद्रोह माना है। सम्पूर्ण इंग्लैंड इस महान संघर्ष से भयभीत हो गया था और उन्हें अपने अस्तित्व का खतरा अनुभव होने लगा था। यह कोई आकस्मिक घटना नहीं थी, अपितु अंग्रेज़ों की भारतीयों पर निरंतर थोपी गई शोषणकारी नीतियों का ही परिणाम थी।

राजनीतिक कारण : ईस्ट इण्डिया कम्पनी के प्रशासकों की साम्राज्यवादी नीति की परिणति 1857 ई. की क्रान्ति थी। रॉबर्ट क्लाईव, लार्ड वेलेजली एवं लार्ड डलहौजी जैसे गर्वनर-जनरलों ने छल एवं बल से अनेक भारतीय रियासतों/राज्यों का कम्पनी साम्राज्य में विलय किया। वेलेजली ने सहायक सन्धि और डलहौजी ने 'लैप्स की नीति' के तहत कई भारतीय रियासतों को हड़पा। लैप्स की नीति के तहत नागपुर, झांसी, जैतपुर, संभलपुर व सतारा आदि राज्यों को कम्पनी ने अपने अधीन कर लिया।

कम्पनी ने सिक्कों पर मुगल बादशाह का नाम अंकित करना बन्द कर दिया। डलहौजी ने घोषणा की कि बहादुरशाह जफ़र अन्तिम मुगल सम्राट होंगे एवं मुगलों को लाल किला छोड़ने का आदेश दे दिया। कम्पनी के इस निर्णय से अंग्रेज़ों के प्रति भारतीय जनता में असंतोष एवं घृणा फैल गई। अंग्रेज़ों ने मराठों के अन्तिम पेशवा बाजीराव द्वितीय के दत्तक पुत्र नाना साहेब को भी उत्तराधिकारी मानने से इन्कार करते हुए उनकी पेंशन बन्द कर दी। झांसी की रानी लक्ष्मीबाई का राज्य भी उसके पति की मृत्यु के बाद छीन लिया गया। अवध के नवाब वाजिद अलीशाह पर कुप्रबन्धन का आरोप लगाकर अवध को अंग्रेज़ी साम्राज्य में विलय कर लिया गया। कम्पनी की इस नीति से असंख्य भारतीय सैनिक बेरोजगार हो गये।

आओ याद करें

- ❑ अंग्रेज़ों द्वारा मुगल सम्राट बहादुरशाह ज़फर को लाल किला छोड़ने के आदेश देना।
- ❑ मुगल सम्राट का सिक्कों पर नाम अंकित न किया जाना।
- ❑ नाना साहब की पैंशन बंद करना।
- ❑ झांसी का अंग्रेज़ी साम्राज्य में विलय करना।
- ❑ अवध पर कुप्रबंधन का आरोप लगाकर अंग्रेज़ी साम्राज्य में विलय करना।

सहायक सन्धि के अन्तर्गत आने वाले राज्यों को अपने दरबार में एक अंग्रेज़ रेजिडेन्ट व अंग्रेज़ी सेना रखनी पड़ती थी, जिसका खर्च राजा वहन करता था। ये सेना कम्पनी के नियन्त्रण में रहती थी।

लैप्स की नीति के अनुसार यदि कोई राजा नि:सन्तान मर जाता था तो उसका राज्य कम्पनी के साम्राज्य में मिला लिया जाता था।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

गतिविधि : अंग्रेज़ों की साम्राज्यवादी नीति से प्रभावित रियासतों/राज्यों के सैनिक बेरोजगार हो गए। आप उन बेरोजगार सैनिकों के परिवार की आर्थिक स्थिति की संकल्पना करते हुए एक अनुच्छेद लिखिए।

धार्मिक-सामाजिक कारण : अंग्रेज़ों ने भारतीय धर्म एवं संस्कृति को भी विखण्डित करने का कुप्रयास किया। अंग्रेज़ पादरियों व ईसाई मिशनरियों ने भारतीयों को बल एवं प्रलोभन से ईसाई बनाना आरम्भ कर दिया। लार्ड मैकाले की शिक्षा नीति का मूल उद्देश्य भी ईसाई धर्म का प्रचार करना था। मैकाले के शब्दों में, ''हमें हिन्दुस्तानियों का एक ऐसा वर्ग तैयार करना है, जो हम अंग्रेज़ शासकों एवं उन करोड़ों भारतीयों के बीच दुभाषिये का काम कर सकें, जिन पर हम शासन करते हैं। हमें हिन्दुस्तानियों का एक ऐसा वर्ग तैयार करना है, जिनका रंग और रक्त भले ही भारतीय हो, लेकिन वह अपनी अभिरुचि, विचार, नैतिकता और बौद्धिकता में अंग्रेज़ हो।'' ईसाई पादरी भारतीय देवी-देवताओं का उपहास उड़ाते थे। सरकारी स्कूलों में बाईबल पढ़ाई जाने लगी। सरकारी नौकरियों में अंग्रेजी भाषा का ज्ञान एवं ईसाई मत को प्राथमिकता दी जाने लगी। 1850 ई. में 'धार्मिक अयोग्यता अधिनियम' द्वारा ईसाई धर्म स्वीकार करने वाले भारतीय को ही उसके पिता की सम्पत्ति में हिस्सा दिये जाने से भी ईसाई धर्म का प्रचार हुआ। अंग्रेज़ों ने भारतीय जनता से दुर्व्यवहार किया। वे भारतीयों को 'काले बाबू' कहकर पुकारते थे। उनके द्वारा भारत में बने सरकारी होटलों एवं दफ्तरों के बाहर सूचनापट्ट पर 'कुत्तों एवं भारतीयों का प्रवेश निषिद्ध है' भी अंकित करवा दिया गया था।

आओ याद करें

- भारतीयों को बलपूर्वक ईसाई बनाना।
- मैकाले द्वारा शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी बनाना।
- सरकारी स्कूलों में बाईबल का अध्ययन अनिवार्य करना।
- रंग एवं नस्ल के आधार पर भारतीयों का अपमान करना।
- सामाजिक एवं धार्मिक रीति-रिवाजों में अनुचित हस्तक्षेप करना।

आर्थिक कारण : अंग्रेज़ों ने 100 वर्षों के शासनकाल में भारतीय अर्थव्यवस्था को चौपट कर दिया। दूषित भू-राजस्व व्यवस्थाओं से किसानों की दशा दयनीय हो गई। छोटी श्रेणी के किसान मजदूर बनकर रह गये। कम्पनी के लगान की बढ़ती मांग एवं 'सूर्यास्त कानून' से परम्परागत जमींदार भूमिहीन हो गये। लार्ड विलियम बैंटिक ने लगान मुक्त भूमि का सर्वेक्षण करवाया। भूमि के निश्चित प्रमाण-पत्र प्रस्तुत न करने वालों की जागीरें छीन ली गई। 1852 ई. में लार्ड डलहौजी ने 'इनाम कमीशन' के तहत लगभग 21 हजार जागीरें जब्त कर ली।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

आओ याद करें

- ❑ दूषित भू-राजस्व व्यवस्था से जमींदारों एवं किसानों को भूमिहीन करना।
- ❑ लघु एवं कुटीर उद्योगों का विनाश करना।
- ❑ आयात एवं निर्यात के नियम अपने अनुकुल बनाना।
- ❑ किसानों एवं मजदूरों का शोषण करना।

सूर्यास्त कानून : 1793 ई. के बंगाल से स्थाई बन्दोबस्त के आधार पर 1794 ई. में लागू किये गये सूर्यास्त कानून के तहत यदि एक निश्चित तिथि को सूर्यास्त होने तक जमींदार जिला कलैक्टर के पास भू-राजस्व की रकम जमा नहीं करता था, तो उसकी पूरी जमींदारी नीलाम हो जाती थी।

'मुक्त व्यापार नीति' के कारण लघु एवं कुटीर उद्योग तबाह हो गये। अंग्रेजों ने भारत से सस्ते दामों पर कच्चा माल खरीदकर इंग्लैंड भेजा और वहां पर तैयार माल महंगे दामों पर भारत की मण्डियों में बेचना शुरू किया। इग्लैंड के तैयार माल से भारतीय बाजार लबालब हो गये और भारतीय माल लगभग अदृश्य हो गया। सदियों से अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में भारत में निर्मित सूती, रेशमी एवं ऊनी वस्त्रों का एकाधिकार था, जो अंग्रेज़ों की दूषित उद्योगनीति की भेंट चढ़ गया। कुशल भारतीय कारीगर अंग्रेज़ी कारखानों में मजदूरी करने लगे। उपर्युक्त कारणों से भारतीय जमींदार, उद्योगपति, किसान एवं मजदूर कम्पनी के विरुद्ध हो गये।

सैनिक कारण : 1854 ई. में कम्पनी की सेना में लगभग 350000 भारतीय सैनिक और 51000 यूरोपियन सैनिक थे। सरकार व सैनिक के मध्य प्रमुख सम्बन्ध वेतन का था। परन्तु सेना के कुल व्यय का आधे से अधिक भाग यूरोपियन सैनिकों पर खर्च किया जाता था। भारतीय सैनिकों को वेतन व भत्ता बहुत कम दिया जाता था। 1844, 1849 एवं 1852 ई. में विभिन्न सैनिक टुकड़ियों ने वेतन वृद्धि के लिए कम्पनी के विरुद्ध विद्रोह किये, लेकिन उन्हें कठोरता से दबा दिया गया। 1856 ई. में पारित 'सामान्य सेवा भर्ती अधिनियम' के अन्तर्गत भारतीय सैनिकों को विदेश में भी भेजा जाने लगा जबकि भारतीय सैनिक समुद्र पार जाना धर्म के विरुद्ध मानते थे। अंग्रेज़ अधिकारी भारतीय सैनिकों से गाली-गलौच करते थे और अपने से हीन समझते थे, जिसकी वजह से भारतीय सैनिकों में

आओ याद करें

- ❑ भारतीय सैनिकों को कम वेतन देना।
- ❑ भारतीय सैनिकों के योग्य होने के बावजूद भी सेना में उच्च पदों से वंचित रखना।
- ❑ अंग्रेज़ी साम्राज्य में विलय किये गये राज्यों के सैनिकों का बेरोजगार होना।
- ❑ भारतीय सैनिकों को समुद्र पार भेजना।
- ❑ चर्बी वाले कारतूसों का प्रयोग अनिवार्य करना।
- ❑ मंगल पांडे को फांसी देना।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

रोष था। अत: सैनिकों ने इस महान क्रांति में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया।

तात्कालिक कारण : भारतीय जनमानस में अंग्रेज़ों के विरुद्ध असंतोष बढ़ रहा था। इसी बीच 1856 ई. में कम्पनी सरकार ने सेना में पुरानी बन्दूकों (ब्राऊन बेस) के स्थान पर नवीन बन्दूकें (एनफील्ड राइफल) सैनिकों को दे दी। इन बन्दूकों में प्रयुक्त होने वाले कारतूसों को मुंह से छीलना पड़ता था। इन कारतूसों को चिकना करने के लिए गाय व सूअर की चर्बी का प्रयोग किया जाता था। यह सूचना जब भारतीय सैनिकों को ज्ञात हुई तो वे क्रोधित हो गये, क्योंकि गाय प्रत्येक हिन्दू सिपाही के लिए पवित्र पशु हैं और मुसलमान सुअर को घृणा की दृष्टि से देखते हैं। अत: चर्बी वाले कारतूस 1857 ई. की महान क्रान्ति का तात्कालिक कारण बने।

गतिविधि : कल्पना कीजिए की आप कम्पनी की सेना में भारतीय सिपाही के रूप में तैनात हैं और अंग्रेज़ अधिकारी आपको चर्बी वाले कारतूसों का प्रयोग करने की आज्ञा देते हैं। आप अपनी प्रतिक्रिया के रूप में एक अनुच्छेद लिखिए।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

क्रान्ति की घटनाएं

चित्र-2. मंगल पाण्डेय

मंगल पाण्डेय, बैरकपुर, अम्बाला एवं मेरठ : 1857 ई. की महान क्रांति का श्रीगणेश बैरकपुर से हुआ। 29 मार्च, 1857 ई. को जब 34वीं रेजिमेन्ट की परेड़ होने लगी तो इस रेजिमेन्ट के एक ब्राह्मण सैनिक मंगल पाण्डेय ने चर्बी वाले कारतूसों का प्रयोग करने से इन्कार कर दिया। इसी समय उसने दो अंग्रेज़ अधिकारियों सार्जेंट मेजर ह्यसन व लेफ्टिनेंट बॉब को गोली से उड़ा दिया। उसने अंग्रेज़ी सेना में कार्यरत भारतीय सैनिकों को अंग्रेजों के विरुद्ध क्रान्ति के लिए उत्साहित किया। उसे घायल अवस्था में पकड़ लिया गया। 8 अप्रैल, 1857 ई. को मंगल पाण्डेय को फाँसी की सजा दे दी गई। जनरल हेअरसें ने 34वीं रेजीमेन्ट को भंग कर दिया। बैरकपुर की इस घटना से क्रान्तिकारियों द्वारा तय तिथि 31 मई से पूर्व ही क्रान्ति आरम्भ हो गई। क्रान्ति के प्रतीक के रूप में कमल का फूल और रोटी को चुना गया।

1857 ई. क्रान्ति के प्रतीक के रूप में कमल का फूल और रोटी को चुना गया। कमल का फूल सभी सैन्य टुकड़ियों तक पहुंचाया गया, जिन्हें महान क्रान्ति में शामिल होना था। रोटी को एक गाँव से दूसरे गाँव तक पहुंचाया गया था।

9 मई 1857 ई. को मेरठ में 85 सैनिकों ने चर्बी वाले कारतूसों का प्रयोग करने से इन्कार कर दिया। उन पर सैनिक मुकद्दमा चलाया गया और उन्हें 10 साल की सजा सुनाई गई और उन्हें अन्य सैनिकों के सामने निर्वस्त्र कर दिया। अंग्रेज़ अधिकारियों द्वारा की गई इस कार्यवाही से क्षुब्ध होकर उनके साथियों नें 10 मई को, रविवार के दिन महान क्रान्ति की शुरुआत कर दी। यूरोपियन अफसरों की हत्या कर दी गई व बन्दी भारतीय सैनिकों को मुक्त करवाया। वे 'हर-हर महादेव' एवं 'मारो फिरंगी को' नारे लगाते हुए दिल्ली की ओर कूच कर गये। मेरठ क्रान्ति से लगभग 9 घंटे पूर्व अम्बाला में क्रांति की शुरुआत हो गई थी। क्रांति के समय अंबाला की छावनी भी अंग्रेज़ों की महत्वपूर्ण सैनिक छावनियों में से एक थी। चर्बी वाले कारतूसों एवं मंगल पाण्डेय की फांसी की सजा की सूचना से यहां के सैनिकों में असंतोष फैल गया। कुछ सैनिक अंग्रेज़ अधिकारियों के पास गये और चर्बी वाले कारतूस वापिस लेने के लिए निवेदन किया। परन्तु अंग्रेज़ अधिकारियों का सकारात्मक जवाब न मिलने के कारण भारतीय सैनिकों ने योजना बनाई कि वे 10 मई, 1857 ई. को रविवार के दिन जब अंग्रेज़ गिरजाघर में प्रार्थना के लिये जांएगे तो वे सैनिक शस्त्रागार पर अधिकार कर लेंगे। परन्तु एक देशद्रोही जासूस शामसिंह ने अंग्रेज़ों को इस योजना की सूचना दे दी और अंग्रेज़ सतर्क हो गये।

10 मई को अम्बाला में 60वीं एवं 5वीं पलटनों ने निर्धारित योजना के अनुसार अंग्रेज़ों के विरुद्ध क्रांति की परन्तु सचेत अंग्रेज़ी सेना ने क्रांतिकारी सैनिकों को तोपों एवं टैंकों से घेर लिया। क्रांतिकारी सैनिकों ने भी 50 अंग्रेज़ अफसरों को बंधक बनाकर अपनी ढाल बना लिया। ऐसी परिस्थितियों में अंग्रज़ों ने क्रांतिकारी सैनिकों की मांगों पर सकारात्मक विचार करने एवं सम्मान के साथ उन्हें सेवा में रखे जाने का प्रस्ताव रखा। क्रांतिकारियों ने भी अंग्रेज़ों का यह प्रस्ताव मान लिया। इस प्रकार एक देशद्रोही के कारण अंबाला में क्रांति की ज्वाला को दबा दिया गया।

दिल्ली : 11 मई, 1857 ई. को ये सभी स्वतन्त्रता सेनानी जनरल बख्तखान के नेतृत्व में दिल्ली पहुँचे। मुगल सम्राट बहादुरशाह जफ़र द्वितीय को पुनः भारत का बादशाह घोषित किया गया। बहादुरशाह जफ़र ने पड़ोसी राज्यों से अंग्रेजों के विरुद्ध संगठित होने का आह्वान किया। दिल्ली पर भारतीयों के आधिपत्य का समाचार आस-पास के क्षेत्रों में तेजी से फैलने लगा। जगह-जगह पर अंग्रेज़ों का विरोध बढ़ने लगा।

दिल्ली पर अधिकार होने के बाद भारतीय सैनिकों ने गुड़गाँव के कलेक्टर फोर्ड को खदेड़कर गुडगाँव

चित्र-3. जनरल बख्तखान

चित्र-4. मुगल सम्राट बहादुरशाह को बंदी बनाते हुए अंग्रेज़ अधिकारी

पर अधिकार कर लिया। राव तुलाराम ने रिवाड़ी में, लाला हुकमचन्द जैन ने हाँसी में मुहम्मद शहजादा आजिम ने हिसार में, नूरसमदखान ने रानियां में, अबुदर्रहमान एवं उसके दामाद समदखान ने झज्जर में, बाबा शाहमल तोमर ने बड़ौत (मेरठ) में एवं राजा नाहर सिंह ने बल्लभगढ़ में क्रान्ति का बिगुल बजाया। सितम्बर 1857 ई. में अंग्रेज़ों ने कड़े संघर्ष के बाद दिल्ली पर पुनः अधिकार किया। बहादुरशाह जफ़र को हुमायूं के मकबरे से बन्दी बनाकर रंगून भेज दिया गया, जहां पर 1863 ई. में उसकी मृत्यु हो गई।

कानपुर, बनारस एवं इलाहाबाद : पेशवा बाजीराव द्वितीय के दत्तक पुत्र 'नाना साहिब' ने जून 1857 ई. में अपने आपको 'पेशवा' घोषित किया। जनरल नील ने इलाहाबाद एवं बनारस में भारतीय जनता पर अत्यधिक अत्याचार किये। नील के अत्याचारों से क्रोधित होकर कानपुर में 'सतीचौरा घाट' पर भारतीय सैनिकों ने अनेक अंग्रेज़ों को मौत के घाट उतार दिया। जनरल हैवलॉक ने 17 जुलाई, 1857 ई. को कानपुर पर अधिकार किया, लेकिन शीघ्र ही नाना साहिब एवं तांत्या टोपे ने अंग्रेजी सेना को पराजित करके कानपुर पर पुनः अधिकार किया। कोलिन कैपबल ने नाना साहिब को कानपुर में हराया। नाना साहिब नेपाल की ओर चले गये और तांत्या टोपे रानी लक्ष्मीबाई से जा मिला।

चित्र-5. नाना साहिब

लखनऊ : 1857 ई. के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम में लखनऊ में वाजिद अलीशाह की बेगम हजरतमहल ने क्रान्ति का झण्डा बुलन्द किया। 10 दिन तक चले संघर्ष में स्वतन्त्रता सेनानियों ने लखनऊ पर अधिकार कर लिया। बेगम हजरत महल ने वाजिद अलीशाह के पुत्र बिरजिस कादिर को नवाब घोषित किया। लखनऊ पर अधिकार करने की लड़ाई में इलाहाबाद व बनारस में निर्दोष पुरुषों, महिलाओं एवं बच्चों की हत्या करने वाला 'क्रूर नील' लखनऊ की गलियों में मारा गया। नवम्बर 1857 ई. में जनरल हैवलॉक एवं कैम्पबैल की सयुंक्त सेना ने लखनऊ पर आक्रमण किया। भीषणयुद्ध में हैवलॉक मारा गया। मार्च 1858 ई. तक लखनऊ पर अंग्रेज़ों का आधिपत्य स्थापित हो गया।

झाँसी : झाँसी में प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम में स्वतन्त्रता सेनानियों का नेतृत्व रानी लक्ष्मीबाई ने किया। जून 1857 ई. में रानी लक्ष्मीबाई ने अंग्रेज़ों को झाँसी से खदेड़कर अपना स्वतन्त्र शासन स्थापित किया। 3 अप्रैल 1858 ई. को अंग्रेज़ी कमाण्डर सर ह्यूरोज ने झाँसी पर आक्रमण किया। रानी का साथ गुलामगौस खान, खुदाबख्श, सुन्दर मुन्दर, काशीबाई, मोतीबाई, लाला भाऊ बख्शी, रघुनाथ सिंह, जवाहर सिंह आदि वीरों ने दिया। कड़े संघर्ष के बाद अंग्रेज़ी सेना किले में प्रवेश करने में सफल हुई। रानी झाँसी छोड़कर काल्पी की ओर चली गई। काल्पी में भी रानी व तांत्या टोपे ने युद्ध के आरम्भ में सर ह्युरोज की सेना को अत्यधिक हानि पहुँचाई। 24 मई को अंग्रेज़ों

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

का काल्पी पर भी अधिकार हो गया। रानी व तात्यां टोपे ने काल्पी से निकलकर ग्वालियर पर अधिकार कर लिया। ग्वालियर का शासक सिन्धियां अंग्रेज़ों की शरण में चला गया। 7 दिन के लम्बे संघर्ष के बाद 18 जून 1858 ई. को अंग्रेज़ी सेना ने ग्वालियर को अपने अधिकार में ले लिया। रानी लक्ष्मीबाई अंग्रेज़ी सेना से लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हुई और तात्यां टोपे अप्रैल 1859 ई. तक अंग्रेजों से संघर्ष करता रहा। देशद्रोही मानसिंह ने अलवर के जंगलों में सोते हुए तांत्या

चित्र-6. रानी लक्ष्मीबाई और अंग्रेज़ों के मध्य संघर्ष को दर्शाता चित्र

चित्र-7. तांत्या टोपे

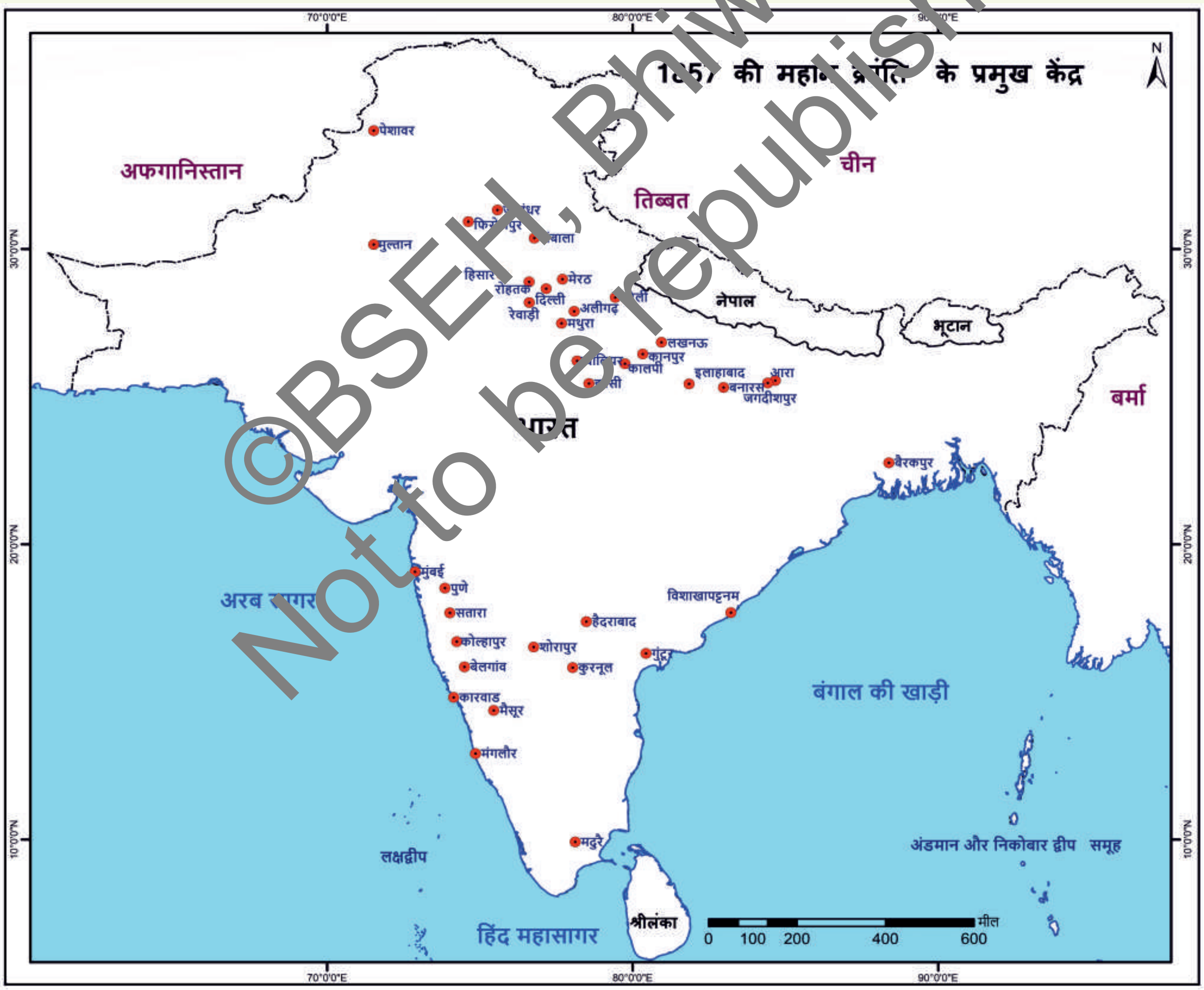

©BSEH, Bhiwani Not to be republished

टोपे को पकड़वा दिया। 18 अप्रैल 1859 ई. को उसे फांसी दे दी गई।

चित्र-8 राजा कुँवर सिंह

जगदीशपुर : जगदीशपुर में 80 वर्षीय राजा कुँवर सिंह ने अंग्रेज़ों के विरुद्ध क्रान्ति का झण्डा बुलन्द किया। उसने अंग्रेज़ों को अनेक युद्धों में पराजित करके स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की। अप्रैल 1858 ई. में वह अंग्रेज़ी सेना से लोहा लेते हुए वीरगति को प्राप्त हुआ। उसकी मृत्यु के बाद उसके भाई अमरसिंह ने क्रान्तिकारियों का नेतृत्व किया। इन प्रमुख केन्द्रों के अतिरिक्त बरेली, शाहजहांपुर, फिरोजपुर, पेशावर, जालन्धर, मुल्तान, उड़ीसा, असम में भी कम्पनी सरकार को भारतीयों के कड़े विरोध का सामना करना पड़ा।

गतिविधि : आप 1857 ई. की महान क्रांति में भाग लेने वाले प्रमख स्वतन्त्रता सेनानियों की सूची बनाइए।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

दक्षिण भारत : 1857 ई. की क्रान्ति एक व्यापक क्रान्ति थी। इसका विस्तार दक्षिण भारत में भी देखने को मिला। महाराष्ट्र के सतारा में इसका नेतृत्व रंगा बापू गुप्ते ने किया। बम्बई में कम्पनी की सेना में क्रान्ति की योजना बनाने वाले सैयद हुसैन व मंगल को तोप से उड़ा दिया। आन्ध्रप्रदेश के हैदराबाद, करनूल, गंटूर और विशाखापट्टनम्, कर्नाटक के मैसूर, कारवाड़, जमखिंडी, शोरापुर, बैंगलौर, बेलगांव, तमिलनाडू के मद्रास, अरकाट, मदुरई तथा तंजोर में भी अंग्रेज़ों का विरोध हुआ। गोवा एवं पाण्डिचेरी में भी क्रान्ति की हलचल हुई।

क्रान्ति का स्वरूप

1857 ई. की महान क्रान्ति गौरवमयी थी। ब्रिटिश अधिकारियों व साम्राज्यवादी लेखकों ने इसे निजी कारणों से सैनिक विद्रोह, मुस्लिम षड्यन्त्र, ईसाई विरोधी विद्रोह एवं सामन्तवादी प्रतिक्रिया सिद्ध करने का असफल कुप्रयास किया है। परन्तु ब्रिटेन के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ डिज़रैली ने इसे राष्ट्रीय विद्रोह कहा है, कई अन्य विदेशी लेखकों ने भी इसे ऐसा जनविद्रोह कहा, जिसमें अंग्रेज़ों को भारत से बाहर निकालने का सामूहिक प्रयास किया गया। इस संघर्ष में लाखों जानें गई। यह इतना व्यापक था कि उत्तर एवं मध्य भारत के साथ-साथ दक्षिण, पूर्व एवं पश्चिम भारत में भी फैला। सैनिकों के अतिरिक्त सजा पाने वालों में नागरिक अधिक थे। सभी धर्मों एवं वर्गों के लोगों ने इसमें भाग लिया। इसी के आधार पर सर्वप्रथम विनायक दामोदर राव सावरकर ने 1908 ई. में 1857 ई. के महान संघर्ष को भारत का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम कहा है। इसके मूल प्रेरक नाना साहब, रानी

लक्ष्मीबाई, कुँवर सिंह, तांत्या टोपे, अजीमुल्लाखान, बेगम हजरतमहल, रंगों बापू, राजा नाहर सिंह, राव तुलाराम, शाहमल आदि को स्वार्थी सामन्त कहना तथ्यपूर्ण नहीं है। यह क्रान्ति सुनियोजित थी। अतः इसे देशव्यापी, देशभक्तिपूर्ण प्रथम राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संघर्ष कहना सर्वथा उचित है।

क्रान्ति का महत्व

यद्यपि भारतीयों का अंग्रेज़ों को भारत से बाहर निकालने का प्रथम संगठित सामूहिक प्रयास असफल रहा, क्योंकि उस समय अग्रेंज़ एक बड़ी सामुद्रिक शक्ति थे। क्रान्ति की तिथि 31 मई 1857 ई. निश्चित की गई थी, लेकिन चर्बी वाले कारतूसों की घटना के कारण यह 10 मई को ही शुरू हो गई। मुगल सम्राट बहादुरशाह जफर क्रान्ति के केन्द्रीय नेतृत्व की कमजोर कड़ी साबित हुए। यातायात एवं संचार के साधनों पर अंग्रेज़ों का आधिपत्य था। इसकी वजह से वे इस महान क्रांति का दमन करने में सफल रहे। परन्तु इस महान संघर्ष ने कम्पनी साम्राज्य की जड़े हिला दी। 1858 ई. में इंग्लैण्ड की संसद में पारित एक्ट के अनुसार कम्पनी राज का अन्त करके भारत को इग्लैंड के अधीन कर दिया। इग्लैण्ड सरकार ने घोषणा की कि अब किसी भी भारतीय राजा का राज्य नहीं छीना जाएगा। उनके आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं किया जायेगा। उन्हें पुत्र गोद लेने व उसे उत्तराधिकार मनोनीत करने का अधिकार दे दिया गया, लेकिन उनको इंग्लैण्ड के शासन के अधीन माना गया। भारत पर अपने राज्य को चिरस्थायी बनाने के लिए अंग्रेज़ों ने भारत के दो बड़े समुदायों, हिन्दू और मुसलमानों को अलग रखने के लिए 'फूट डालो और राज करो' की नीति को प्रमुखता देने का प्रयास किया गया। सैन्य प्रशासन में भी अनेक बदलाव किए गए। सेना में यूरोपियन सैनिकों की संख्या बढ़ा दी गई। सेना का तोपखाना व गोलाबारूद यूरोपीयन सैनिकों

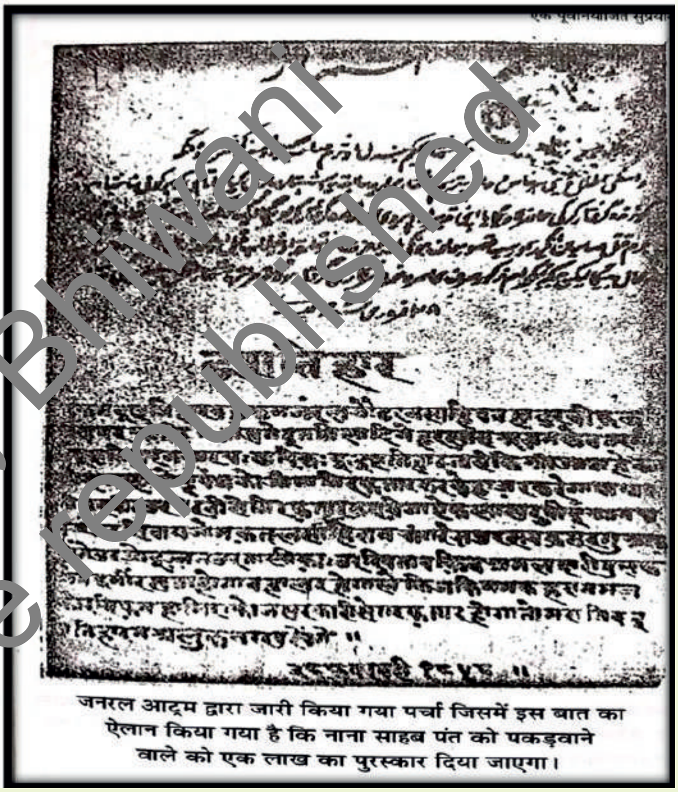

चित्र-9. नाना साहब को पकड़वाने के लिए दिया गया इश्तेहार

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

के अधीन रखने का निश्चय किया गया। सेना का इस प्रकार पुनर्गठन किया गया कि उनमें एकता की भावना पैदा न हो सके। सेना का आधार जातीय रखा गया। लेकिन इन सबके बाद भी भारतीयों का यह प्रथम स्वतंत्रता संग्राम भारतीय इतिहास में मील का पत्थर सिद्ध हुआ। 1857 ई. का यह स्वतंत्रता संग्राम आने वाली पीढ़ियों के लिए प्रेरणादायक सिद्ध हुआ। यह संग्राम भारत में राष्ट्रीयता के बीज बोने में पूर्णतया सफल रहा।

मूलतः यह स्वतंत्रता संग्राम विदेशी शासन को उखाड़ फेंकने के लिए लड़ा गया था। इसमें जनसाधारण की भागीदारी भी सराहनीय थी। संग्राम के दौरान सैनिक जहाँ से गुजरते थे, स्थानीय लोगों की सहानुभूति उनके साथ होती थी। संग्राम में स्त्रियों ने भी भाग लिया। झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई ने महिलाओं की एक टुकड़ी बनाई तथा उसे प्रशिक्षण भी दिया। 1857 ई. के स्वतंत्रता संग्राम से पूर्व मुगल बादशाह बहादुरशाह जफ़र ने अनेक राजपूत शासकों को पत्र लिखकर यह इच्छा प्रकट की थी कि अंग्रेज़ों को भारत से बाहर निकाला जाए। लेकिन संचार के साधनों की कमी के कारण देश के सभी शासकों को एकजुट करना असंभव था जिससे स्वतंत्रता का यह प्रथम संग्राम व्यवस्थित रूप से संगठित नहीं हो पाया। परन्तु फिर भी यह महान क्रांति अपने मूलभूत उद्देश्यों को परिपूर्ण करने में सफल रही। इससे भारतीय स्वतंत्रता का मार्ग प्रशस्त हुआ और 15 अगस्त, 1947 ई. को भारत को स्वतंत्रता प्राप्त हुई।

आओ याद करें :

1. डलहौजी ने घोषणा की कि बहादुरशाह जफ़र भारत का अंतिम मुगल सम्राट होगा एवं मुगलों को लाल किला छोड़ने का आदेश दिया।
2. 1857 ई. का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम लिखने वाला प्रथम भारतीय विनायक दामोदर सावरकर था।
3. अंग्रेजों ने अवध के नवाब वाजिद अली शाह पर कुप्रबंधन का आरोप लगाकर अवध को अंग्रेजी साम्राज्य में मिला लिया।
4. डलहौजी ने 1852 ई. के इनाम कमीशन के तहत लगभग 21000 जागीरें जब्त कर ली।
5. 1857 ई. में रेवाड़ी में क्रांतिकारियों का नेतृत्व राव तुला राम ने किया।
6. 1857 ई. की महान क्रांति का प्रथम शहीद मंगल पांडे एवं अंतिम शहीद तांत्या टोपे था।
7. 1857 ई. की महान क्रांति में बल्लभगढ़ में क्रांतिकारियों का नेतृत्व राजा नाहर सिंह ने किया।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

रिक्त स्थान भरो :

1. 1857 ई. की क्रान्ति का प्रथम शहीद .... था।
2. 1857 ई. की क्रान्ति के समय दिल्ली का मुगल सम्राट .... था।
3. रेवाड़ी में 1857 ई. में प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम का नेतृत्व .... ने किया।
4. 1857 ई. की क्रान्ति का लेखन करने वाले प्रथम भारतीय .... था।
5. अम्बाला में 60वीं पलटन की क्रांति की सूचना .... नामक देशद्रोही ने अंग्रेज़ों को दी थी।

उचित मिलान करें :

1.	बल्लभगढ़	राजा नाहर सिंह
2.	हाँसी	अन्तिम गवर्नर जनरल
3.	कानपुर	बख्त खान
4.	लार्ड कैनिंग	लाला हुकम चन्द जैन
5.	मेरठ	नाना साहिब

आओ विचार करें :

1. 1857 ई. की महान क्रान्ति के लिए उत्तरदायी राजनैतिक एवं सामाजिक कारण क्या थे?
2. 1857 ई. की महान क्रान्ति के लिए उत्तरदायी धार्मिक, सैनिक एवं तत्कालीन कारण क्या थे?
3. झांसी में 1857 ई. की महान क्रान्ति की गतिविधियों की विवेचना कीजिए।
4. 1857 ई. की महान क्रान्ति के महत्व की समीक्षा कीजिए।
5. हरियाणा में 1857 ई. की महान क्रान्ति की गतिविधियों की विवेचना कीजिए।

आओ करके देखें :

1. 1857 ई. के प्रमुख स्वतन्त्रता सेनानियों की चित्र सहित जीवन परिचय का संकलन कीजिए।
2. भारत के मानचित्र पर 1857 ई. के महान क्रान्ति के प्रमुख केन्द्रों को चिह्नित कीजिए।
3. 1857 ई. की महान क्रान्ति भारतीयों में राष्ट्रीय विचारधारा के उदय में किस प्रकार सहायक सिद्ध हुई? अपने विचार प्रस्तुत कीजिए।
4. 1857 ई. की महान क्रान्ति में भारतीय जनमानस की सहभागिता पर अपने विचार प्रस्तुत कीजिए।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished